समरथ

नवम्बर — दिसम्बर 2005 नई दिल्ली

नाहि तो जनम नसाई

अंग्रेजी भाषा के विश्वविख्यात कवि टी. एस. इलियट ने कहा था, 'अप्रैल क्रूरतम् महीना है'। लेकिन भारतीय संदर्भ में यही बात दिसम्बर के बारे में कही जा सकती है। 3 दिसम्बर 1984 : भोपाल त्रासदी। यूनियन कार्बाइड में जहरीली गैस के रिसाव ने सैकड़ों जानें लीं और ऐसा प्रभाव छोड़ा कि आज भी बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं। मुआवज़े के नाम पर पीड़ितों को ठोकरें ही मिली। 6 दिसम्बर 1992 : बाबरी मस्जिद विध्वंस। आग ऐसी फैली कि उसकी लपटें पूरे देश में फैलती हुई देश की सीमाएं तक लांघ गयीं। 13 दिसम्बर 2001 : भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला। पूरे देश में दहशत का माहौल। आज जब 2005 के दिसम्बर की दहलीज़ पर हम आ पहुंचे तो बीते वर्षों की काली छाया को याद करना और कामना करना कि अब कोई दिसम्बर ऐसा न गुज़रे, हमारा कर्तव्य है। जब भी हम नए वर्ष में दाखिल हों, बीते वर्ष की सुनहरी यादें हमारे साथ हो न कि दुखों के बोझ। इसी इच्छा और कामना के साथ हम आप सबको नए वर्ष 2006 की शुभकामनाएं देते हैं पर बीते हुए काले दिसम्बरों में से एक दिसम्बर की याद दिलाकर — 6 दिसम्बर 1992। ऐसा इसलिए कि इस घटना को और इससे जुड़े मुद्दे को कुछ निहित स्वार्थ बार—बार इस्तेमाल करने का प्रयास करते हैं।

दूसरा वनवास

कैफ़ी आज़मी (1993)

राम वनवास से जब लौटकर घर में आये
याद जंगल बहुत आया, जो नगर में आये

रक़्से दीवानगी आंगन में जो देखा होगा
छः दिसंबर को श्री राम ने सोचा होगा
इतने दीवाने कहां से मेरे घर में आये

जगमगाते थे जहां राम के कदमों के निशाँ
प्यार की काहकशां लेती थी अंगड़ाई जहाँ
मोड़ नफ़रत के उसी राहगुज़र में आये

धर्म क्या उनका था, क्या ज़ात थी, यह जानता कौन
घर न जलता तो उन्हें रात में पहचानता कौन
घर जलाने को मेरा, लोग जो घर में आये

शाकाहारी हैं मेरे दोस्त तुम्हारे खंजर
तुमने बाबर की तरफ़ फ़ेंके थे सारे पत्थर
है मेरे सर की खता, ज़ख्म जो सर में आये

पांव सरयू में अभी राम ने धोये भी न थे
कि नज़र आये वहाँ खून के गहरे धब्बे

पांव धोये बिना सरयू के किनारे से उठे
राम ये कहते हुए अपने दुआरे से उठे

राजधानी की फ़िज़ा आई नहीं रास मुझे।
छः दिसंबर को मिला दूसरा वनवास मुझे।

हिन्दुत्व में मजदूरों और महिलाओं का स्थान

–राम पुनियानी

मजदूर

स्वतंत्रता आन्दोलन के समय मजदूरों को कम्युनिस्टों ने संगठित किया। स्वतंत्रता के पहले कम्युनिस्ट मुख्य विरोधी पार्टी थी जो ''परस्पर विरोधी हितों'', 'वर्ग–युद्व तथा सम्पन्न्ता और अभाव' की विचारधारा पर आधारित थी।

मजदूरों में कम्युनिस्टों के प्रभाव का मुकाबला करने के लिये संघ परिवार ने भारतीय मजदूर संघ की स्थापना की। भारतीय मजदूर संघ ने वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को ठुकराया। हालांकि ऊपरी तौर पर, यह पूंजीपतियों के मुनाफाखोरी का आलोचक है लेकिन उस 'व्यवस्था' का नहीं, जो पूंजीपतियों को उत्पादन के साधनों पर पूरा नियंत्रण देती है। यह हिन्दू विकल्प, उद्योगों को पारिवारिक व्यवसाय में बदलने का आदर्श सामने लाता है यानी यह समाज में पितृ वांशिक सत्ता का स्थायीकरण लादना चाहता है। इसके अनुसार उद्योगपतियों के पितृसत्तात्मक निरीक्षण के तहत मजदूर व्यवस्थापन में सहभागी होंगे।

यह मजदूरों को उद्योग–मालिकों से सद्भावनापूर्ण रिश्ते बनाने की सलाह देता है। यह मजदूरों की अंतराष्ट्रीय एकजुटता को नकारता है। अपने आचरण में भारतीय मजदूर संघ ट्रेड यूनियन का सौम्य रूप है जो मुख्य रूप से 'सफेदपोश' कर्मियों के बीच मज़बूत है। इनके द्वारा कोई भी कठोर संघर्ष नहीं चलाया जाता। इसके अलावा संघ परिवार ने भारतीय मजदूर संघ के ज़रिये मजदूरों को ''कार सेवा'' के लिये लामबंद किया था। खेत मजदूरों, गरीब मजदूरों, और आदिवासियों के संघर्ष में इनकी पूर्ण अनुपस्थिति है।

यह दिलचस्प बात है कि आज जबकि संगठित कार्यशक्ति अपने आकार में घट गयी है और उत्पादन लघु क्षेत्रों में चला गया है जहां पर काम करने की परिस्थितियां बहुत खराब हैं भारतीय मजदूर संघ इन मुद्दों पर विशेष रूप से मौन है। स्वदेशी उद्योगपतियों की तारीफ की जाती है जबकि इनकी फैक्टरियों में काम करने की परिस्थितियां बहुत ही खराब हैं। इसने हड़ताल जैसे हथियार का उस समय पर भी विरोध किया जबकि यह बहुत प्रभावी था। इसके बारे में उनका तर्क है कि उत्पादन को रोकना राष्ट्रहित के खिलाफ है। यूनियन की ताकत को तोड़ने के लिये उद्योगपति बार–बार तालाबंदी का इस्तेमाल करते हैं। जहां तक आजकल की ''तालाबन्दी'' की बात है भारतीय मजदूर संघ इस मुद्दे पर पूरी तरह मौन है। उद्योगपति इसका उपयोग मुनाफे को दूसरी तरफ मोड़ने और उद्योगों को स्थलांतरित करने के लिये करते हैं। कई जगहों पर कारखाने में मजदूरों की एकता को तोड़ने के लिये भारतीय मजदूर संघ और उसकी कनिष्ठ और विकृत बिरादर भारतीय कामगार सेना (शिवसेना से संलग्न) ने खुद को आरएसएस के हाथ का खिलौना बन जाने दिया और इसके बदले में आरएसएस के पर्सोनेल विभाग के विस्तारित रुप का काम किया।

महिलायें

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्यों की महिला रिश्तेदार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में शामिल होना चाहती थीं, जबकि वह केवल पुरुषों का संगठन है। लेकिन उन्हें अलग से राष्ट्र सेविका समिति का गठन करने की सलाह दी गयी। रा.से. समिति की स्थापना 1936 में की गई और यह प्रमुख संगठन रा.स्व.संघ के मातहत काम करती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सूक्ष्म रूप से मनुस्मृति की समझ पर आधारित है जिसमें गर्भ की तुलना खेत से की गई है जिसमें पुरुष बीज बोता है और इस तरह खेत की पैदावार का वह मालिक होता है। मनुस्मृति के अनुसार पत्नी को मितव्ययी होना चाहिये, प्रसन्न मन से गृहकार्य करना चाहिये और जीवनभर पति की आज्ञा मानना चाहिये और यदि पति मर जाय तो ब्रह्मचर्य जीवन बिताना चाहिये। आज्ञा न माननेवाली औरत को इस जीवन में तथा अगले जीवन में गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी जाती है। पुरुषों की तुलना में औरतें कम बुद्धिवाली होती हैं और एक गवाह के रूप में उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ महिलाओं के काम को राष्ट्रसेविका समिति के दायरे में एक कनिष्ठ दर्जे में रखता है, साथ ही साथ उनकी घरेलू मेहनत को विनम्र सेवा के दायरे में सीमित रखा जाता है। यानी जीवन की विभिन्न स्थितियों में औरत को पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में रहना होगा। महिलाओं को उपनयन का अधिकार नहीं है और महिलाओं के लिये शिक्षा का विकल्प विवाह और पति की सेवा करना है। उनके लिये गृहस्थी की तुलना विद्यार्थी अवस्था से की गयी है।

संघ परिवार महिलाओं को हिन्दू देवियों की छवि, यानी आज्ञाकारी, त्याग करनेवाली पत्नी और माता के रूप में प्रस्तुत करता है और इसी भावना से भा.ज.पा. महिलाओं को मातृशक्ति कहती है। उसी तरह भा.ज.पा. महिला मोर्चा अपने आपको पश्चिम के नारी मुक्ति आन्दोलन से अलग घोषित करता है। रा. से. समिति दृढ़ता से कहती है कि हमें पारिवारिक और सामाजिक ढांचे में एक तरह का पुनर्समायोजन करना चाहिये, मूल्यों में किसी भी तरह के मूलभूत बदलाव की जरूरत नहीं है। भारत में महिलाओं को हमेशा से ही घर और समाज में सम्मान का दर्जा मिलता रहा है, उसे केवल पुनः स्थापित करना होगा। यहां तक कि भा.ज.पा. की महिला मोर्चा की भूतपूर्व अध्यक्षा मृदुला सिन्हा के अनुसार महिलाओं की प्राथमिक भूमिका घर में है। उन्हें अपने जीवन की गतिविधियों में परिवार और उसकी एकता को हर हालत में प्राथमिकता देनी चाहिये। संघ

परिवार महिलाओं को अधिक आज़ादी देने का घोर विरोधी है क्योंकि उसके अनुसार ऐसा करने पर परिवार टूट जाएंगें। यह बात परिवार और समाज में पुरुषों के वर्चस्व को चुनौती देनेवाले नारी आन्दोलन की भूमिका के एकदम विपरीत है।

इस विचार का विकास हमें साम्प्रदायिक दंगों में देखने को मिलता है खास करके मस्जिद ध्वंस कांड के बाद सूरत में हुए 1992–93 के दंगों में। बहुसंख्यकों द्वारा गढ़े गये इस प्रचार तंत्र से निर्मित जन–मानस की आन्दोलित मानसिकता को कोई भी देख सकता है। बहुसंख्यक गुट यह आरोप लगाता है कि उनकी महिलाओं पर अल्पसंख्यक संप्रदाय के पुरुषों द्वारा बलात्कार किया गया : यह एक ऐसा आरोप है जो आगे चलकर बहुसंख्य सम्प्रदाय के वर्चस्व का समर्थन कर सकता है और महिलाओं को बहुत कम सम्मान देने वाले अल्पसंख्यक पुरुषों की चरित्रहीनता को प्रदर्शित कर सकता है। इस तरह अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की औरतों को अनैतिक पुरुषों की संपत्ति के रूप में चित्रित किया जा सकता है कि वे भी चरित्रहीन हैं और वे इस तरह के दुराचरण की पात्र हैं। गोलवालकर यह सिद्धांत बघारते हैं कि चूंकि औरतें मुख्य रूप से माता होती हैं इसीलिये उन्हें संघ के उद्देश्य की मदद करनी चाहिये, उन्हें हिन्दू संस्कारों के ढांचे के तहत बच्चों को पालना चाहिये। असमानता प्रकृति का अविभाज्य अंग है और हमें उसके साथ जीना चाहिये, सामंजस्य बनाना चाहिए न कि समानता के लिये लोगों को संगठित करना चाहिये। महिलाओं को 'आदर्श' माता होना चाहिये और रा. स्व. संघ के संस्कारों के ढांचे के अंतर्गत बच्चों का पालन–पोषण करना चाहिये।

अटल बिहारी वाजपेयी, एक हिन्दी साप्ताहिक को दी गयी भेंटवार्ता में कहते हैं कि जो महिलायें पुरुषों की तरह बनना चाहती हैं वे दुत्कार के काबिल हैं। हिन्दुत्व के समर्थकों का कहना है कि हिन्दू समाज में महिलाओं का स्थान अधिक सम्मानजनक रहा है और बाहरी लोगों का शिकार बनने से उनकी रक्षा करने के लिये उनपर बंधन डाले गये हैं। हिन्दुत्व महिलाओं पर लादे गये बंधन और सुखद स्थिति से उनके हालात में पतन के लिये मुस्लिम राजाओं के आक्रमण को दोषी ठहराते हुए इतिहास को विकृत करता है। बाहरी खतरों के जवाब के रूप में पितृसत्तात्मक स्वरूप का यह स्पष्ट प्रस्तुतीकरण है जिसका लक्ष्य है विरासत में मिली किसी भी विशेषता से हिन्दू समाज को मुक्त करना। यह हिन्दू समाज के अन्दरूनी टकराव की समस्या का बाह्यीकरण है, समाज के अन्दर के कारणों का दोष बाहर के लोगों पर लादना है। चूंकि पितृसत्तात्मकता का विरोध करने वाले लोग अपने प्रियजनों का विरोध करने के मामले में असहज हैं इसलिये समाज की समस्या का कारण बाहरी दमनकारियों को बताया है।

भा.ज.पा. महिला मोर्चा की भूतपूर्व अध्यक्ष मृदुला सिन्हा कहती हैं कि (1) किसी भी महिला को बाहर काम नहीं करना चाहिये जब तक कि उसका परिवार बहुत संकट में न हो (2) मैंने दहेज लिया और दिया (3) मैं नारी मुक्ति का विरोध करती हूं क्योंकि यह चरित्रहीनता का दूसरा नाम है (4) मैं स्त्री–पुरुष को समान अधिकार देने का विरोध करती हूं (5) महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा में कोई बुराई नहीं है, ऐसे मामलों में ज़्यादातर गलती महिलाओं की ही होती है। हम औरतों को राय देती हैं कि वे सामंजस्य का प्रयास करें क्योंकि ऐसा न करने पर समस्या पैदा हो जाएगी (6) यथास्थिति को कायम रखने में ही औरत का भविष्य है क्योंकि दुनिया में कहीं भी भारत की तरह औरत की पूजा नहीं होती। (7) हमारे लिये स्त्री मुक्ति का मतलब है अत्याचार से मुक्ति। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें उनके पत्नी और माता के कर्तव्य से मुक्त कर दिया जाय।

महिला मोर्चा की एक भूतपूर्व अध्यक्षा विजयाराजे सिंधिया ने सती विरोधी विधेयक के विरोध में निकाले गये एक जुलूस का नेतृत्व किया और इस निदर्शन का दावे के साथ समर्थन करते हुए जोर देकर कहा कि, ''सती होना हिन्दू औरतों का मूलभूत अधिकार है क्योंकि यह हमारे विगत गौरव और संस्कृति की धरोहर है''। करीब 20 हजार कार सेविकाओं ने मस्जिद विनाश के दौरान कार सेवकों के भोजन व्यवस्था और साफ–सफाई का काम किया। बकौल उमा भारती विध्वंस कार्य में उन्होंने अपने मर्द भाईयों का साथ दिया।

राष्ट्रसेविका समिति : राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सड़क लड़ाई युद्धाभ्यास के विपरीत, रा.से. समिति ने शारीरिक कसरतें शुरू की क्योंकि उनकी मान्यता है कि एक स्वस्थ्य महिला का शरीर ही सुदृढ़ बच्चे पैदा कर सकता है।

पाककला और केश विन्यास के लिये रा. से. समिति द्वारा कमल क्लब शुरू किये गये। दहेज और वधू–दहन के बारे में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भूमिका संदिग्ध है। समिति के खिलाफ लड़ने के लिये तथा अपने अधिकार पाने के लिये कानूनी सलाह की कोई सुविधा नहीं है। सामाजिक जीवन के क्षेत्र पर उभरने देने के बजाय संघ परिवार महिलाओं को आदर्श माता और पत्नी के रूप में मर्द का मातहत बनकर रहने के लिये मजबूर करता है।

संघ परिवार का कहना है कि औरत और मर्द बराबर हैं लेकिन एक नहीं हैं। समानता के प्रति उसका रवैया महज औपचारिक है। पारंपरिक भूमिकाओं को मज़बूत करना ही इसकी नीति है। औपचारिक समानता और विभिन्न भूमिकाओं को पेश करते हुए संघ परिवार सकारात्मक कार्य को टालने में न केवल समर्थ है बल्कि वह यह भी सुनिश्चित करना चाहता है कि औरत पारंपरिक स्त्रीत्व की सीमाओं में बंधकर रहे तो दूसरी तरफ वह अल्पसंख्यक विरोधी हिंसा के नये राजनैतिक माहौल में उनके घरेलूपन को बढ़ावा देने और ऐसी गतिविधियों में भाग लेने में महिलाओं की सहभागिता भी बढ़ाता है। अपनी समस्याओं का हल पाने के लिये साम्प्रदायिकता की भावना पैदा करने में संघ परिवार 'सफल' रहा है और इसके द्वारा औरतों को एक ''अलग'' सामाजिक स्थान दे सका है। हिन्दुत्व नारी मुक्ति आन्दोलन की अवधारणा का विरोध करता है। यह परिवार और समाज में पुरुष वर्चस्व के विरोध में खड़े नारी आन्दोलन के विपरीत होने वाली बात है। संघ परिवार की सफलता इस बात में है कि महिलायें इसे राष्ट्र की एकता और सुरक्षा के लिये आवश्यक एक धर्मयुद्ध के रूप में देखती हैं। यह स्थिति महिलाओं को एक तरफ लोकतांत्रिक नियमों और लैंगिक न्याय के बीच बांध कर रखती है और सच्चाई तो यही है कि उनकी पहचान उनकी लैंगिक पहचान से जोड़ी जाती है।

शेष पृष्ठ 5 पर.....

सभ्य समाज और लोकतांत्रिक राज का सच

–राम सुजान अमर

मानवाधिकार आयोग ने पिछले दिनों अनुसूचित जातियों पर हो रहे अत्याचारों और इन्हें रोकने के लिए बने कानूनों के हश्र के बारे में एक रिपोर्ट जारी की है। 'रिपोर्ट ऑन प्रिवेन्शन ऑफ एट्रोसिटीज अगेन्स्ट शेडुल्ड कास्ट्स' नामक इस दस्तावेज़ से आज़ाद भारत में भी अनुसूचित जातियों की जारी दुर्गति साफतौर पर उभरकर आती है। इस बात का विशेष महत्व है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग जैसी एक प्रमुख संवैधानिक संस्था की रिपोर्ट हमारे 'सभ्य समाज और लोकतांत्रिक' राज की असलियत से हमें रू–ब–रू कराती है।

इस रिपोर्ट की प्रस्तावना में सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति ए.एस. आनंद कहते हैं – 'संविधान में पर्याप्त प्रावधानों और अन्य कानूनों के बावजूद यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि सामाजिक अन्याय और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य कमज़ोर तबकों का शोषण जारी है। भारत द्वारा अपने को एक गणतंत्र घोषित करने की आधी सदी से अधिक के बाद भी सामान्यतः तमाम अनुसूचित जातियों के लोगों एवं खासकर दलितों को जिस अपमान से गुज़रना पड़ता है, वह एक 'शर्म की बात है।' पूरी रिपोर्ट में इस 'शर्म की बात' के कारणों की शिनाख्त की कोशिश की गयी है। इस कोशिश के नतीजे में समाज, प्रशासन एवं शासन सब कटघरे में खड़े दिखायी देते हैं।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की यह रिपोर्ट आंकड़ों के आधार पर पूरे देश में दलितों की प्रताड़ना एवं पीड़ा को व्यापकता एवं गहराई से प्रस्तुत करती है। इसमें बताया गया है कि दलितों के नागरिक अधिकारों की रक्षा और उनके विरुद्ध अत्याचारों की रक्षा और उनके विरुद्ध अत्याचारों को रोकने के लिए बने कानूनों के तहत सबसे अधिक मामले उत्तर प्रदेश में दर्ज हुए हैं। इसकी बुनियादी वजह यह है कि दूसरे राज्यों की तुलना में उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों की आबादी कहीं ज्यादा है। उत्तर प्रदेश के अलावा राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और बिहार वे अन्य राज्य हैं जहां अनुसूचित जातियों पर अधिक जुल्म हुए हैं। पर इस रिपोर्ट की असली ताकत इन अत्याचारों के पीछे के कारणों की पहचान के प्रयास में निहित है। साफतौर पर रेखांकित किया गया है कि हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था से उपजी सोच इसकी एक प्रमुख वजह है। दूसरी बात यह है कि ग्रामीण इलाकों में भूमि से जुड़े मामले दलितों पर अत्याचार का एक बड़ा कारण हैं। भूमि सुधारों की विफलता से अनुसूचित जातियों को वह आर्थिक आधार नहीं मिल सका जो उन्हें 'सामाजिक संरचना' की काट में मददगार बनता।

रिपोर्ट में कहा गया है कि भूमि सुधारों को लागू करने में कुछ मामलों एवं कुछ राज्यों को छोड़कर कहीं सफलता नहीं दिखायी पड़ती। भूमि सुधारों का क्रियान्वयन राजनीतिक इच्छाशक्ति एवं नौकरशाहों में प्रतिबद्धता की कमी, कानूनों में मौजूद खामियों, भूस्वामियों की दांव–पेंच की व्यापक क्षमता, गरीबों के बीच संगठन के अभाव और अदालतों की अत्यधिक दखलंदाजी की भेंट चढ़ गया। वितरण के लिए बहुत कम अतिरिक्त जमीन भूस्वामियों से प्राप्त की जा सकी। इस निराशाजनक स्थिति में यह शायद ही संभव था कि भूमि सुधारों का कुछ ठोस लाभ अनुसूचित जातियों को मिल पाए। इस तरह दलितों को उनकी कमज़ोर स्थिति एवं बेचारगी से उबारने के एक कारगर उपाय को आगे नहीं बढ़ाया जा सका। इस स्थिति ने दलितों को कई जगहों पर एक नयी तरह की राजनीतिक पहलकदमी से जुड़ने को मजबूर कर दिया।

रिपोर्ट में कहा गया है कि कुछ ऐसे भी अवसर आते हैं जब कोई दलित व्यक्ति किसी राज्य के मुख्यमंत्री की गद्दी तक जा पहुंचता है। पर वह भी सामाजिक संरचना एवं राजनीतिक समीकरण के दबाव में अपने समुदाय के हित में कोई मजबूत एवं असरदार निर्णय नहीं ले पाता। ऐसे माहौल में कई बार दलित जातियां अपने सम्मान एवं भूमि सुधारों की खातिर रेडिकल वामपंथी आंदोलनों से भी जुड़ी हैं। सवर्ण सामंती तत्वों के लिए यह स्थिति बर्दाश्त से बाहर साबित हुई है। इसके जवाब में इनकी निजी सेनाओं ने आगजनी, बलात्कार एवं सामूहिक कत्लेआम जैसे बर्बर जुल्म दलितों पर ढाए हैं। रिपोर्ट बताती है कि औरतें इसकी खास भुक्तभोगी होती हैं। रिपोर्ट में कहा गया है – 'अनुसूचित जाति की औरतों पर अत्याचारों की सबसे कड़ी मार पड़ती है। अनुसूचित जाति की औरतों के साथ हुए बलात्कार की गिनती बढ़ती गयी है। ऊँची जाति की निजी सेनाओं द्वारा सामूहिक बलात्कार की गिनती बढ़ती गयी है। ऊंची जाति की निजी सेनाओं द्वारा सामूहिक बलात्कार का इस्तेमाल पूरे समुदाय के मनोबल को तोड़ने के एक हथियार के रूप में होता है।

दरअसल बलात्कार एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल होता है और ये औरतें प्रभुत्वशाली जातियों के गुस्से का निशाना बन जाती हैं। औरतों को छोटे–मोटे झगड़ों के मामले में भी ऊँची जाति के लोगों द्वारा नंगा करके घुमाने जैसी कई अन्य तरह की जिल्लत से गुजरना पड़ता है। औरतों को धर्म के नाम पर उस 'देवदासी' जैसी सबसे धृणित वेश्यावृति प्रथा में धकेल दिया जाता है जिसमें अधिकतर 'अछूतों की 6 से 8 वर्ष की लड़कियां भगवान को समर्पित कर दी जाती हैं। ये शादी नहीं कर सकती हैं और मंदिर के पुजारी और ऊँची जाति के लोग इनके साथ बलात्कार करते हैं। आखिरकार इन लड़कियों को शहरी चकलाघरों में बेच दिया जाता है।'

रिपोर्ट बताती है कि निजी सेनाओं द्वारा या अन्य रूपों में ढाए गये जुल्मों में राज्य अनुसूचित जातियों के बदले अत्याचारियों के पक्ष में खड़ा नज़र आया है। इसका कारण नौकरशाही सहित सारी राज्य मशीनरी एवं सामाजिक संरचना में व्याप्त पक्षपात है। ऐसा लगता है कि 'पर्याप्त संवैधानिक प्रावधान लोकतांत्रिक प्रक्रिया, विकास, जागृति एवं शिक्षा के उदारचेता प्रभाव नागर समाज (सिविल सोसायटी) को रूपांतरित करने में सफल नहीं हो सके हैं।' दुःखद तथ्य यह भी है कि इस तथाकथित 'सभ्य' समाज की नयी पीढ़ी भी वर्णवादी सोच से उबर नहीं पायी है। इन सारी चीजों का राज्य मशीनरी की संरचना एवं उसके व्यवहार पर खासा असर होता

है। रिपोर्ट में इन बातों पर गंभीरता एवं तनिक विस्तार से चर्चा की गयी है। कहा गया है कि इन स्थितियों में राजनीतिक स्तर पर भी ईमानदारी की कमी है और अनुसूचित जातियों की स्थिति के प्रति एक गहरी उदासीनता है। इस माहौल में समझना मुश्किल नहीं है कि दलितों पर जुल्म ढाने वाले लोग कैसे बच निकलते हैं और कानून धरा का धरा रह जाता है।

बहरहाल, दलितों, आदिवासियों के प्रति गहरी संवेदनशीलता के लिए चर्चित रहे अवकाश प्राप्त आई.ए.एस, अधिकारी के.बी. सक्सेना द्वारा तैयार की गयी राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की यह रिपोर्ट 'सरकारी' भाषा की उलझन से परे दो टुक शब्दों में बातों को रखती है। अनुसूचित जातियों के पक्ष में बने कानूनों के बेअसर रहने के कारणों की ओर इशारा करते हुए यह रिपोर्ट स्पष्ट तौर पर बयान करती है – विभिन्न अनुसूचित जाति संगठनों और मानवाधिकार संस्थाओं द्वारा अत्यंत जतन से तैयार की गयी रिपोर्ट कानून लागू करने वाले तंत्र – पुलिस, प्रशासन और न्यायपालिका, खासकर पुलिस में व्याप्त पक्षपातपूर्ण रवैये को बेनकाब कर देती है। पक्षपात नहीं तो एक उदासीनता राहत वितरण और पुनर्वास जैसे गैर–विवादित मामलों में भी दिखायी पड़ती है। अनुसूचित जातियों पर हिंसा रोकने के मामले में नौकरशाही का पक्षपात सामाजिक एवं आर्थिक कानूनों को लागू करने के संदर्भ में भी खुलकर सामने आ जाता है। यहां नौकरशाही ही अपराधी है जिसका नज़रिया और व्यवहार तमाम स्तरों पर क्रियान्वयन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।'

कुल मिलाकर, रिपोर्ट के तथ्यों एवं विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सदियों से आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर जी रहे दलितों के प्रति समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों का नज़रिया लोकतंत्र, समता और न्याय आदि के तमाम ढोल–बाजे के बावजूद नहीं बदला है। यह सुनना अत्यंत कष्टदायक लग सकता है, पर दलितों के मामले में क्या 'अगड़ा' क्या 'पिछड़ा'–सब के सब एक हैं। आज भी असल प्रश्न यही है कि दलित लोग मनुष्य हैं या नहीं ? तथाकथित भूमंडलीकरण के इस दौर में यह पूछना कितना ही दारूण क्यों न हो, पर इसी आईने में हम अपने तथाकथित महान देश की असली सूरत देख सकते हैं। देश के कोने–कोने में दलित आज भी भीषण पीड़ा और प्रताड़ना की ज़िंदगी झेल रहे हैं और हमारा 'सभ्य' समाज 'बेखबर' अपने विकास का गुणगान किये जा रहा है। और दलित तबका इस 'विकास' में शिरकत का महज स्वप्न भी देखने की 'जुर्रत' करे तो उसे बेइंतहा जुल्म के चक्के और तेजी से रौंदने लगते हैं। पर किसी राष्ट्र–राज्य को एक लोकतंत्र के रूप में यदि बने रहना और बढ़ना है तो इस भीषण सामाजिक, आर्थिक गैर–बराबरी और अन्याय से निजात पानी ही होगी।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट इस दिशा में अनेक सिफारिशें भी पेश करती है। सारांशतः अनुसूचित जातियों को जारी त्रासदी से मुक्त कराने के लिए उनके संरक्षण के लिए बने विभिन्न कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करने और दोषियों को दंड देने के साथ–साथ सामाजिक संरचना एवं सोच में व्यापक परिवर्तन की भी जरूरत है। कहना न होगा कि इसमें 'राज्य, समाज और स्वयं अनुसूचित जातियों की अपनी–अपनी भूमिका है।

पृष्ठ 3 को शेष.....

इसी तरह लघु भगवा संगठन शिवसेना ने निम्न मध्यमवर्गीय औरतों को बच्चा घर, दोपहर–भोजन योजना, नागरिक सुविधाओं में मदद, त्योहार इत्यादि, के द्वारा लामबंद करने में सफलता पायी है। महिलाओं को सांस्कृतिक हिमायत में एक स्थान देकर यह उन्हें स्व–सम्मान मुहैया कराता है। परंपरा और परिवर्तन के बीच यह एक चतुरतापूर्ण संतुलन है। यह बात नारीवादियों के आंदोलन के विपरीत है हालांकि वे नारीवादी संगठन बिना किसी साम्प्रदायिक पहचान के उनके अधिकारों के लिये संघर्ष में उनका साथ देते हैं। इस माने में उनका संघर्ष ज़रूरी और सही होने के बावजूद बाहरी और एकाकी रहता है। जबकि हिन्दुत्व लामबन्दी के मामले में अपने प्रियजनों के विरोध में न जाकर वे एक नियंत्रित, अंदरूनी तरीके से एक नया स्थान पाने में सफल हो जाती हैं। यह नियंत्रित स्वतंत्रता संघ परिवार द्वारा नियंत्रित आन्दोलन में महिलाओं के सहभाग को बहुत बड़ा बढ़ावा देती है। जबकि नारी मुक्ति आंदोलन परिवार के भीतर तथा समाज में अन्य जगहों पर महिलाओं की स्थिति और वर्चस्व की अवधारणा का आवाहन करता है और यातनामय खतरे उठाते हुए असहज प्रश्न पूछने के लिये महिलाओं को प्रेरित करता है। हिन्दुत्व उन्हें तत्कालीन संदर्भ में आकर्षित करता है क्योंकि वह उन्हें समाज में 'सम्मानपूर्वक' दर्जा देता है और उनकी तत्कालीन आकांक्षाएं पूरी करता है।

यह जानना दिलचस्प होगा कि संघ परिवार की प्रमुख महिला नेताओं को अविवाहित चित्रित किया गया है (उमा भारती, साध्वी ऋतंभरा)। संघ परिवार ने निःस्वार्थ, बलिदान और आज्ञाकारिता की धारणा को काफी वैधता दी है। महिला नेतृत्व की दिशा और उपदेश खास करके दुश्मन के खिलाफ हिंसा फैलाने के लिये ''मर्द भाईयों'' के लिये है।

कुछ मतभेदों के बावजूद महिलाओं के प्रति संघ परिवार के दृष्टिकोण में ''शीर्ष'' समानतायें हैं। नाज़ीवाद महिलाओं के उद्धार को नीची नजर से देखता था और उसने औरतों के लिये मातृत्व को सबसे पवित्र गुण के रूप में पेश किया (हिटलर – औरत के लिये मातृत्व सबसे बड़ा सम्मान है)। वहां पर यह चित्रित किया गया कि जर्मन महिलायें पत्नी और माता बनना चाहती हैं''। उन्हें जर्मन संस्कृति का वाहन और वांशिक शुद्धता का रक्षक कहा गया। इनके अलावा आत्मबलिदान की भावना को पवित्र सद्गुण कहा गया। ज़्यादातर महिलाओं को उनके सामाजिक महत्व के कारण हिटलर की योजना के प्रति उत्साह था। ये बातें उन गतिविधियों से मेल खाती थीं जो कि ये यों भी करतीं हीं थीं (रसोई और बच्चे पालना)। एडॉल्फ हिटलर को सुधरे स्प में उद्धृत करते हुए गोलवालकर कहते हैं कि ''यह प्रकृति की अद्भुत चीज है'' यानी जब तक कि वे प्रकृति द्वारा प्रदत्त अपने – अपने काम पूरे करते हैं तब तक इन दोनों (पुरुष और औरत) के बीच कोई अंतर्विरोध नहीं है। नाज़ियों में अधिकृत सिद्धांत में यह कहा गया है कि पुरुष और स्त्री के बीच लैंगिक फर्क उनके लैंगिक काम के लिये ही है।

(स्त्रोत : तनिका सरकार, उवर्शी बुटालिया : 'वीमन एंड दी हिंदू राईट' काली फॉर वीमेन 1995)

–लोकतांत्रिक भारत या हिंदूराष्ट्र से साभार

वाजपेयी जवाब दें

–आई.एस.डी.

शायद ही दुनिया का कोई देश हो जिसने भारत की तरह शर्मनाक ढ़ंग से नई सदी में प्रवेश किया हो। भा.ज.पा.–राजग के राज के दौरान भारत के विदेश मंत्री द्वारा कंधार में तीन आतंकवादियों को खुद उनके साथियों के हवाले करना अपने आप में एक शर्मनाक बात के अलावा, आतंकवाद के सामने आत्मसमर्पण के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद से लड़ाई में भारत की भूमिका की तरफ भी इशारा करता है। आज तक ये बात समझ में नहीं आयी कि ऐसी क्या बात थी जिसकी वजह से भारत को आतंकवाद के सामने इस गंदे तरीके से आत्मसमर्पण करना पड़ा।

जब भी इस आत्मसमर्पण का इतिहाए लिखा जायेगा कुछ गलतियां जो बहुत महंगी पड़ीं वो सामने जरूर आ खड़ी होंगी। नेहरू–इंदिरा–राजीव काल के बाद 31 दिसम्बर 1999 का कंधार में भारत सरकार की घुटने टेक पूरे दस साल पहले यानि 1989 में रूबैया सैय्यद को छुड़ाने में आतंकवादियों की रिहाई–ये दो घटनाएं भारत के इतिहास में सबसे ज़्यादा शर्मनाक घटनाओं के रूप में लिखी जायेंगी। रूबैया के बदले में आतंकवादियों को छोड़ने में पाकिस्तान को कश्मीर में भड़काने का सुनहरा मौका दिया। बेनज़ीर भुट्टो ने इसे 2003 में माना भी और कहा कि रूबैया ने पाकिस्तान को राजनैतिक–सैनिक गतिविधियों को बढ़ाने का मौका दिया।

कंधार में आत्मसमर्पण के बाद सीमा–पार के आतंकवाद ने 'मारो और भागो' की जगह सैनिक कैम्पों और सत्ता के प्रतीकों–जैसे पार्लियामेंट और लाल किला पर हमलों ने ले ली। नयी सदी के पहले तीन दिनों में ये हमले बढ़े जिसमें श्रीनगर में बम विस्फोटों में 31 जानें गयीं। आई.सी. 814 का अगुवा होने में, स्ट्रोब तालबाट की ताजा किताब के मुताबिक ''कइयों ने मुशर्रफ की व्यक्तिगत जीत बतायी क्योंकि खुद मुशर्रफ ने ही इसकी योजना बनायी थी... ।''

इसके बावजूद कारगिल युद्ध कराने और हवाई जहाज को हाई जैक कराने वाली (उसने उन तीनों आतंकवादियों को गले लगाया था जिन्हें भारत ने दिया था) वाजपेयी सरकार का पाकिस्तान हमेशा एहसानमंद रहेगा क्योंकि इस सब के बावजूद वाजपेयी सरकार ने मुशर्रफ को आगरा आने का निमंत्रण दिया। आगरे ने मुशर्रफ को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य बना दिया। इससे पहले पश्चिमी यूरोप का कोई भी देश मुशर्रफ को बुलाने के लिये तैयार नहीं था। वाजपेयी सरकार के शुरू में मुशरर्फ के सैनिक रिजीम के साथ 'शांतिवार्ता' शुरू कर एक बार फिर मुशरर्फ की मदद की। अब तक पाकिस्तान की अणुवस्त्रों की संख्या बढ़ाने के लिये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आलोचना हो रही थी। वही वाजपेयी जिन्होंने मुशर्रफ को सत्ता पर अपना शिकंजा कसने में मदद की, आज खुद विपक्ष में शैडो–प्राइम मिनिस्टर की हैसियत तक से भी नहीं बैठे हैं।

तालबोट ने लिखा है जब उन्होंने जसवन्त सिंह को उनके कंधार से आने के बाद फोन किया तो उस वक्त जसवंत सिंह अपने घर में बैठे शैम्पेन पी रहे थे... । वो थके हुए ज़रूर थे पर पूरी तरह संतुष्ट थे और पूरी तरह से कनवीन्सड थे कि उनका आत्मसमर्पण का फैसला पूरी तरह ठीक था। इस फैसले ने जो नुकसान पहुंचाया उसे कोई तर्क नहीं मिल सकता। इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि हवाई जहाज में सवार 161 यात्रियों की जान बचानी ज़रूरी थी। लेकिन जब मुशर्रफ को वाजपेयी ने आगरा वार्ता के लिये बुलाया तब तक तीन आजाद किये गये आतंकवादियों में से दो आइ.एस.आई. समर्थित आतंकवादी गुट जैश–ए–मोहम्मद और अल ऊमर के सदस्य पाये गये और इन आतंकवादी गुटों ने 161 से ज़्यादा भारतीयों को आतंकवादी हमलों में मार दिया था। तीसरे आतंकवादी ने सितम्बर 11, 2001 के आतंकवादी हमले में आर्थिक मदद दी थी। वाजपेयी को और भी शर्मसार होना पड़ा जब ये पता लगा कि दिसम्बर 13, 2001 के पार्लियामेंट पर हमले में मसूद–अज़हर और उसके जैश–ए–मोहम्मद का तीसरा आज़ाद किये गये आतंकवादी का हाथ था।

इसके बाद भारत ने कई सौ मिलियन डॉलर भारतीय सेना को सीमा पर दस महीने रैड अलर्ट में रख कर खर्च किये। सत्ता के खाली प्रदर्शन के इन दस महीनों में बहुत सारे सैनिक सुरंग उड़ाने और ऐसे ही टकराव में मारे गये। रही कंधार की कीमत तो उसे आंकना मुमकिन नहीं है।

जसवंत सिंह की आतंकवाद के गढ़ कंधार तक की उड़ान की कहानी भी कुछ कम बेतुकी नहीं है। ये कहानी शुरू होती है जसवंत सिंह की भ्रांतिपूर्ण बातों से। जैसे ही हाइजैक किया गया हवाई जहाज़ कंधार में उतरा तभी फौरन जसवंत सिंह ने प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलायी और उसमें कहा कि ये तालीबान और उसके आकाओं यानि पाकिस्तान में मतभेद पैदा करने का सुनहरा मौका है! जसवंत सिंह अपनी ख्याली दुनिया में जी रहे थे। ये इस बात से साफ ज़ाहिर होता है। सच कहा जाये तो आत्मसमर्पण की तैयारी कई दिनों पहले ही शुरू हो गयी थी। राजनीतिक आदेशों के तहत खुफिया एजेन्सियाँ रिश्तेदारों को सरकारी मीटिंगों की जगह तक बता रही थीं। बाद में टी.वी. चैनलों को इनके विरोध प्रदर्शनों को लगातार दिखाकर ज़रूरत से ज़्यादा दबाव बनाने का दोषी ठहराया गया।

आज छह साल बाद भी कई सवाल परेशान कर रहे हैं। हालांकि देश उस जवान होस्टेज को भूल चुका है जिसका गला हलाल तरीके से काटा गया था क्योंकि उसने आतंकवादियों को ललकारा था। कोई दूसरा देश उसको नायक बना कर अमर कर चुका होता। अभी तक इस सवाल का जवाब नहीं मिला है, 'अमृतसर हवाई अड्डे से जहाज उड़ कर लाहौर गया जहां पर आतंकवादियों को पिस्तौलें दी गयी। किसी ने भी क्यों हवाई जहाज के टायर पंचर करने के लिये गोली नहीं चलाई ? जांच पूरी होने के बाद भी किसी को भी आज तक सजा क्यों नही हुई ?

आज़ादी के बाद सबसे कमज़ोर प्रधानमंत्री वाजपेयी ने आज तक इस सवाल का जवाब नहीं दियाः अगर आतंकवादियों की मांग

शेष पृष्ठ 15 पर.....

बहुलतावादी संस्कृति के विरुद्ध

दंगाइयों की कोई जाति या राष्ट्रीयता नहीं होती

–परमानंद श्रीवास्तव

हटिंग्टन की भविष्यवाणी कि धर्मान्धता बढ़ेगी – इक्कीसवीं सदी में सच होती दिखती है। अभी तो इक्कीसवीं सदी की शुरुआत है – आगे जाने क्या हो। 'महाजनी सभ्यता' निबंध में प्रेमचंद ने लिखा था – 'धर्म की स्वतंत्रता का अर्थ अगर पुरोहितों, पादरियों, मुल्लाओं की मुफ्तखोर जमात के दंभमय उपदेशों और अंधविश्वास जनित रूढ़ियों का अनुसरण है तो निस्संदेह वहां इस स्वातंत्र्य का अभाव है, पर धर्म–स्वातंत्र्य का अर्थ यदि लोकसेवा, सहिष्णुता, समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान, नेकनीयती, शरीर और मन की पवित्रता है, तो इस सभ्यता में धर्माचरण की जो स्वाधीनता है और किसी देश को उसके दर्शन भी नहीं हो सकते।' अभी अभी मऊ में फैले सांप्रदायिक दंगों की खबरों के बीच एक यह भी है कि मुस्लिम बस्ती में चल रहे संस्कृत पाठशाला का भवन दंगाइयों ने क्षतिग्रस्त कर दिया। आश्चर्य नहीं कि वहां मुस्लिम छात्र भी प्रवेश लेते आ रहे हों। आखिर गुजरात में अहमदाबाद में ही मस्जिद में या मुस्लिम समाज की सम्मानित बस्ती में मुसलमान बच्चे संस्कृत में ही संवाद कर पा रहे हैं। यह हमारी बहुलतावादी संस्कृति का एक आदर्श उदाहरण है। दंगाइयों की कोई जाति या राष्ट्रीयता या संस्कृति नहीं होती। कभी हमारे शहर में महीनों जारी रहने वाले कर्फ्यू के बाद हमने छूट का फायदा लेकर मऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का राज्य सम्मेलन बुलाया था। नामवर सिंह, काशीनाथ सिंह, पी.एन. सिंह, वीरेन्द्र यादव, विभूति नारायण राय जैसे अनेक लेखक–बुद्धिजीवी वहां इकट्ठा थे। नामवर सिंह ने मऊ को बुनकरों का शहर कहा था जहां फटे को भी सीने का चलन है। उधर संकीर्ण–धर्मांध ताकतें हैं जो फटे हुए में टांग अड़ा रही है।

खबर थी कि दंगा बलिया, बहराइच और गाजीपुर चला गया है। गाजीपुर राही मासूम रजा के गांव गंगोली के लिए जाना जाता है। वहां से 'समकालीन सोच' और 'परिचय' जैसी सेकुलर पत्रिकाएं निकलती हैं। वहां से कम्यूनिस्ट पार्टी के नामवर कार्यकर्ता निकले हैं। यह कैसा दंगा है जो भरत मिलाप और रोजे के संदर्भ में घटित हुआ। किस राजनेता के पास इस समस्या को सुलझाने–उलझाने की कुंजी है। कभी स्टूडेंट्स फेडरेशन जैसे छात्र संगठनों के लिए गाजीपुर जाना गया। हालत यह है कि फासीवादी ताकतें तो रास्ता जाम कर रही हैं और प्रदेश में राष्ट्रपति शासन की मांग कर रही है। किसी की दिलचस्पी भारतीय समाज में बहुसंख्यक अल्पसंख्यक राजनीति का व्याकरण समझने में नहीं है। बुकर सम्मानित लेखिका अरुंधती राय इसे फासीवाद और साम्राज्यवाद की मिली–जुली साजिश बताती हैं। अरुंधती राय के शब्द हैं – 'अतीत के खिलाफ खड़े होने से हमारे जख्म नहीं भरेंगे। इतिहास घट चुका है। यह खत्म हो गया है, जो हम कर सकते हैं वह यह कि इसकी दिशा बदल सकते हैं।' (न्याय का गणित – 32 पृष्ठ)

पीएसी के सांप्रदायिक उन्माद का दस्तावेज कथाकार विभूति नारायण राय लिख चुके हैं। जहां भाजपा सत्ता में थी, दंगे वहीं हुए। बाबरी मस्जिद ध्वंस के समय भी उत्तर प्रदेश में भाजपा सत्ता में थी। नरसिंह राव के हिंदू होने और आस्तिक होने का फायदा उठा लिया। मऊ में हत्यारे अब भी चुप न बैठे होंगे पर सपा का शासन है, खुद अल्पसंख्यक (मुसलमान) सपा के साथ हैं इसलिए स्थिति सुधर सकती है। गांव–गांव में रथ यात्रा, खड़ाऊं पूजन चलाकर भाजपा ने सांप्रदायिकता को विस्तार दे दिया है। मुस्लिम समाज में स्त्रियां पीड़ित हैं, भद्र वर्ग को कुलीनता कमरे में बंद रखती है। बेरोजगार नौजवान ही आगजनी, लूटपाट में शामिल हैं। उन्हें कुरान की आयतें क्यों याद आएंगी। याद आएगा तो यह कुपाठ कि औरतें मर्दों की खेती हैं। वे काटे या बोएं या बंजर रहने दें, क्या फर्क पड़ता है। प्रजनन को यों भी कृषि संस्कृति का रूपक मान लिया गया है। सुभाषिनी अली भी ऐसा ही मानती हैं। हिंदुत्व का कार्ड शहरी कुलीनों के पास है।

यह कैसा समाज है जिसे आम आदमी की समस्याएं नहीं छूतीं। न महंगाई, न बिजली संकट, न सूखा, न चुनावी हिंसा। इसे केवल भरतमिलाप, दशहरा, दीवाली, ईद खटकते हैं। वे पर्व या त्योहार खटकते हैं जिनमें जनता मेले की सी खुशी मानती है। दुर्गा पूजा या काली पूजा, मुहर्रम, ईद में कोई भेदभाव नहीं है। उन्हीं प्रतिमाओं के विसर्जन के समय पथराव हो जाता है, दंगा फैल जाता है। स्त्रियां दुर्गा को क्या कन्या की तरह विदा नहीं करतीं। आंसू बहुत–बहुत बेचैन नहीं कर रहे होते हैं। विजयोन्माद का शोर धीमा पड़ जाता है। मां के घर आने की प्रतीक्षा साल भर के लिए टल जाती है। लोग भूल गये हैं कि राजनीति का भी कोई धर्म हो सकता है। मऊ के दंगे को सर्वेक्षणों में वीभत्सतम बताया जा रहा है।

प्रेमचंद के जन्म के सवा सौ साल पूरे हो रहे हैं। उन्होंने कहा था – 'फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन–सी संस्कृति है जिसकी रक्षा के लिए सांप्रदायिकता इतना जोर मार रही है। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा पाखंड और इसके जन्मदाता भी वही लोग हैं जो सांप्रदायिकता की शीतल छाया में बैठे विहार करते हैं।' यही 'शीतल छाया' दंगाइयों के चलते आग की लपटों में बदल जाती है। न हिंदू सुरक्षित अनुभव करता है न मुसलमान। 'ईदगाह' सांस्कृतिक एकता की कहानी है। इस तरह की व्याख्या के लिए हमें नजरिया बदलना पड़ेगा। मेले में हिंदू–मुसलमान बच्चे साथ हैं। हामिद उनके लिए नायक हो जाता है – चिमटा सुंदरतम खिलौना जान पड़ता है। हामिद का चिमटा ही सुघड़ दर्शनीय कलाकृति हो जाता है। यही है दूसरा सौंदर्यशास्त्र जिसमें उपयोगिता भी कलात्मकता से होड़ लेती है। अरुंधती राय ने गुजरात को वह तश्तरी बताया जिसमें फासीवाद परसा जा रहा है।

अंत में याद करें पाकिस्तानी शायर जीशान साहिल की नज्म : पाकिस्तान : जो एक छोटा–सा मुल्क है/जिसके झंडे को देख के/हमें अपना मुल्क याद आने लगता है (जो शायद कहीं नहीं है)। यही समय है कि जब उत्तर प्रदेश में सांप्रदायिक दंगे जैसी घटनाएं हो रही हैं, भारत सरकार एक से अधिक बार पाकिस्तान के भूकंप पीड़ितों के लिए राहत सामग्री भेज रही है। दंगाइयों के क्षुद्र विध्वंसक मुहल्लों में क्या इस वैश्विक भूकंप त्रासदी का पता है।

झूठे जग पतियाना

भाजपा और सांप्रदायिकता

–डा. योगेश भटनागर

पिछले दो–चार महीनों से लगता है कि भाजपा एक राजनीतिक दल है ही नहीं। इसके नेता, पार्टी का दृष्टिकोण और पार्टी की दिशा किसी एक विचारधारा के आधार पर तय नहीं करते नज़र आ रहे हैं। हालांकि सभी जानते हैं कि भाजपा, आरएसएस (जो अपने आप को एक सांस्कृतिक संगठन कहते हैं) का एक राजनीतिक मंच भर है। इसलिए भाजपा में दोहरी सदस्यता भी है। एक जो आरएसएस से आये हैं और दूसरे वो जो व्यक्तिगत तौर पर या किसी और पार्टी से आये हैं। ज़ाहिर है सदस्यों के बीच टकराव होगा ही। लेकिन चूंकि ज़्यादातर सदस्य आरएसएस से आये हैं इसलिये इस पार्टी में सांप्रदायिक, अल्पसंख्यक विरोधी और फासीवादी विचारधारा का वर्चस्व रहता है और हर परिस्थिति का इसी नज़रिये से विश्लेषण किया जाता है। पिछले महीनों से कुछ संघी भाजपा को संघ से आज़ादी दिलाने की कोशिश में नजर आये। इसी संदर्भ में आडवाणी के जिन्ना के बारे में बयान और वाजपेयी के समर्थन को समझना चाहिये। आडवाणी ने अभी हाल ही में कहा था कि 'वो जो भी आज हैं वो आरएसएस द्वारा दिये गये संस्कारों की वजह से हैं। चौदह साल की उम्र से वो स्वयंसेवक हैं।' 10 अगस्त को आरएसएस की दिल्ली में आयोजित विशेष शाखा में वाजपेयी और आडवाणी ने बंद लिफाफों में 'गुरू दक्षिणा' दी। इसके कुछ ही दिन बाद वाजपेयी ने भी जिन्ना को धर्मनिरपेक्ष बताया और वो भी सर संघ चालक के.एस. सुदर्शन की उपस्थिति में। मतलब कि दोनों जनता को दिखाना चाहते हैं कि वो आरएसएस से आज़ाद होना चाहते हैं।

भाजपा अपने चेहरे–मोहरे को बदलने मतलब आरएसएस से आज़ाद होने के लिए पहली बार कवायद नहीं कर रही है। इससे पहले 1965 में जनसंघ के महासचिव स्वर्गीय दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानवतावाद' का नारा दिया था। बाद में 1980 के सम्मेलन के दौरान वाजपेयी ने भी 'गांधीवादी समाजवाद' के एक नए फिकरे की ईजाद की थी। **गौर करने की बात है कि शब्दों की यह बाजीगरी दो ऐसे लोग कर रहे थे जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा में गहरे पगे थे। और आज भी यही दो स्वयंसेवक कर रहे हैं।** उस वक़्त इस राजनीतिक लफ्फाजी का एक खास सामयिक संदर्भ था। पार्टी का मकसद इस समय सावरकर–गोलवलकर के अग्राह्य हिंदू उग्रवाद से पीछा छुड़ाना और पार्टी को जनता के बीच ज्यादा स्वीकार्य बनाना था। 1965 में कांग्रेस एक मुश्किल दौर से गुजर रही थी। 1962 में चीन के हाथों मिली पराजय से जनता के बीच कांग्रेस और नेहरू की साख काफी गिर गई थी। इसके बाद 1964 में नेहरू का देहांत होने और आर्थिक समस्याओं के विकराल रूप लेने से एक राजनीतिक शून्यता का माहौल पैदा होने लगा। जनसंघ ने इसी राजनीतिक शून्यता को अपने पक्ष में मोड़ने की कवायद शुरू की। इससे पहले जनसंघ की राजनीति में कोई खास पैठ नहीं थी। उसका असर महज उत्तर भारत के व्यापारिक वर्गों, पंजाब और सिंध से आए हिंदू शरणार्थियों तक ही सीमित था। अब जनसंघ ने मध्य वर्ग के उन मुक्त चिंतकों को अपनी ओर आकर्षित करना शुरू किया जो किसी संकीर्णता में नहीं पड़ना चाहते थे। इस काम के लिए जनसंघ ने दीनदयाल द्वारा प्रतिपादित अवधारणा 'एकात्म मानवतावाद' का इस्तेमाल करना शुरू किया। दरअसल, यह कांग्रेस से दूर हटे मध्यवर्ग को अपने निकट लाने और राष्ट्रीय मीडिया में अपनी पैठ बनाने की रणनीति थी। दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में एकात्म मानवतावाद का उद्देश्य एक समरसतापूर्ण समाज का निर्माण करना था। एक ओर जहां जनसंघ मध्यवर्ग के उदारवादी और शांतिप्रिय वर्गों के वोट बटोरने के लिए दीनदयाल की एक शाकाहारी किस्म की आध्यात्मिक राजनैतिक शब्दावली को परोस रहा था वहीं वह अपने पुराने सामाजिक आधार को बनाए रखने के लिए वही सब कर रहा था जो एकात्म मानवतावाद के उद्देश्यों के धुर खिलाफ जाता था। 1966 के सम्मेलन में जनसंघ ने दो ऐसे प्रस्ताव रखे जिससे उसकी असलियत सामने आ जाती है। एक प्रस्ताव था युवाओं को अनिवार्य सैनिक शिक्षा देने का और दूसरे प्रस्ताव में इस बात की वकालत की गई थी कि कश्मीर में युद्ध विराम रेखा के साथ–साथ सैन्य ठिकाने स्थापित किए जाने चाहिये। प्रस्ताव में आणविक हथियारों के निर्माण पर भी जोर दिया गया था। दीनदयाल के इस एकात्म मानवतावाद और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सैन्यवादी सोच का जनसंघ को खूब लाभ मिला। 1962 में जहां जनसंघ की संसद में कुल 14 सीटें थीं वहीं 1967 तक आते–आते उसकी सीटों की संख्या 35 हो गई थी। इसी प्रकार राज्य विधानसभाओं में भी उसकी कुल सीटें 119 से बढ़कर 257 हो गयी थीं।

हालांकि 60 और 70 के दशक में जनसंघ का चुनावी प्रदर्शन बहुत अच्छा नहीं रहा था। लेकिन 1977 के चुनावों में उसकी राजनीतिक आकांक्षाएं खूब परवान चढ़ी। इस दौर में कांगेस विरोधी लहर पर सवार होकर जनसंघ जनता सरकार का मुख्य आधार बनने की स्थिति तक पहुंच गया। इन चुनावों में जनसंघ के 63 सदस्य संसद में पहुंचे थे। जनता सरकार में जनसंघ सबसे बड़ा धड़ा था। लेकिन गौर करने की बात है कि जनसंघ के ये कार्यकर्त्ता और सदस्य नई सरकार में शामिल होने के बावजूद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा को आगे बढ़ाते रहे। उन्होंने सरकारी मशीनरी का संघ के 'हिंदू राष्ट्र' और 'अखंड भारत' जैसी अवधारणाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए खूब इस्तेमाल किया। इन लोगों ने सभी मंत्रालयों में संघ के हमदर्द लोगों को भारी संख्या में भर्ती किया। इसके चलते यह हुआ कि जनता सरकार और जनसंघ के पैरोकारों के बीच ठन गई और अंततः जनसंघ को गठबंधन व सरकार दोनों को छोड़ना पड़ा। मजे की बात यह थी कि सरकार का सदस्य होने के बावजूद जनसंघ के लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से नाता तोड़ने की बात नहीं मान रहे थे। खैर, अप्रैल 1980 में भारतीय राजनीति में बेरोजगार और अलग–थलग हो चुके इस धड़े ने खुद को भारतीय

जनता पार्टी के रूप में संगठित किया। पार्टी के अध्यक्ष बने वाजपेयी जो संघ के एक कर्मठ और निष्ठावान कार्यकर्ता थे। वाजपेयी ने पार्टी की स्थापना के साथ गांधीवादी समाजवाद का नारा दिया। दरअसल यह नारा एक राजनैतिक चाल थी। इसके ज़रिये गांधी और वामपंथ की परंपरा को हथियाने की कोशिश की जा रही थी। लेकिन वाजपेयी की यह चाल सफल नहीं हो पाई। अस्सी के इस दौर में कांग्रेस की हालत सुधरने लगी थी और इंदिरा गांधी की मौत के बाद जब राजीव गांधी ने सत्ता संभाली तो भाजपा की रही–सही उम्मीदें भी धूमिल हो गई। इस दौर में राजीव गांधी युवाओं के आदर्श और प्रतीक बन गए थे। इंदिरा गांधी की मौत से पैदा हुई सहानुभूति की लहर पर सवार होकर कांग्रेस ने दिसंबर 1984 के संसदीय चुनाव में भाजपा जैसे सभी दलों का सूपड़ा साफ कर दिया। इस चुनाव में भाजपा के हाथ सिर्फ दो सीटें आई थीं।

गौर करने की बात है कि उसके बाद से लेकर आज तक भाजपा के किसी भी नेता ने न दीनदयाल के एकात्म मानवतावाद की सुध ली है और न वाजपेयी के गांधीवादी समाजवाद से धूल झाड़ने की कोशिश की गई है। इन राजनीतिक अवधारणाओं का न कभी आडवाणी ने अपनी रथ यात्रा के दौरान जिक्र किया न हाल में गुजरात नरसंहार के दौरान नरेन्द्र मोदी की प्रशासनिक कार्रवाइयों में इनकी कोई झलक मिली है।

यह बात याद रखने की है कि आरएसएस पिछले 80 सालों से इसी तरह राजनीतिक पार्टीयां चलाता रहा है। पहले हिंदू महासभा ने संघ को स्वीकार किया। पर जैसे ही आरएसएस ने हिंदू महासभा के संगठनिक ढांचे को प्रभावित करना चाहा तो सावरकर ने आरएसएस से रिश्ता तोड़ लिया। नतीजा, आरएसएस ने भारतीय जनसंघ का गठन किया। बलराज मधोक ने संघ से आज़ादी चाही तो संघ ने मधोक को छोड़ दिया। काफी अरसे तक जनसंघ राजनीतिक तौर पर हाशिये पर रहा। **1967–1977 में उसे ये प्रतिष्ठा दिलवायी समाजवादी राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी ने। लोहिया का उस वक्त नारा था 'किसी भी तरह कांग्रेस का विध्वंस'। ये नारा आज तक भी बरकरार है। भाजपा–राजग की सरकार ने छह साल तक इसी नारे के अनुयायियों के साथ मिलकर राज किया।** और वही सब किया जो उन्होंने 1977 में आरएसएस की विचारधारा को बढ़ाने के लिये किया। सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल सांप्रदायिकता, कट्टरवादिता और मुस्लिम विरोधी नीतियों को आगे बढ़ाने के लिये किया। आरएसएस के आदमियों की सरकार में गवर्नरों और शिक्षा संस्थानों में नियुक्तियाँ की और वो भी खुल्लम–खुल्ला।

सवाल यह है कि भाजपा कब सांप्रदायिक, कट्टरवादी और फासीवादी पार्टी नहीं थी और संघ की विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं थी। राज्य सरकार द्वारा प्रायोजित और तत्कालीन केंद्र सरकार द्वारा समर्थित गुजरात जनसंहार के दौरान जान और माल की हानि कोई नहीं भूला है। अमरीका के एक विचार मंच ने नये धार्मिक आंदोलनों की श्रेणी में आतंकवादी संगठन अलकायदा और कुछ दुसरे समूहों के साथ आरएसएस को भी रख दिया है। अमरीकी बुद्धिजीवियों के इस समूह रेंड के एक नये अध्ययन में कहा गया कि नये धार्मिक आंदोलन (एनआरएम) हिंदुत्व में पाये जा सकते हैं जिनमें एक है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। अध्ययन में कहा गया है कि कोई भी एनआरएम चाहे वह हिंसक क्यों न हो, एक ही तरह के विचार रखता है। इस आधार पर अध्ययन में आरएसएस को एक उग्र हिंदू राष्ट्रवादी संगठन करार दिया गया है। अध्ययन में कहा गया है कि आरएसएस में धार्मिक संगठनों की तरह ही सभी तत्व उपस्थित हैं। यह संगठन उग्रवादी धार्मिक विचारों पर आधारित है जो घृणा और पृथकतावाद को बढ़ावा देता है। 'एक्सपलोरिंग रिलिजस कंफ्लिक्ट' शीर्षक से किये गये इस अध्ययन में बताया गया है कि इस संगठन को हमेशा संकीर्ण विचारधाराओं से युक्त पाया गया हैं। रेंड कॉपरेशन द्वारा किये इस अध्ययन में उस घटना का भी जिक्र है जिसमें 1948 में महात्मा गांधी की हत्या के बाद आरएसएस पर कुछ वर्षों के लिए घृणा फैलाने वाले विचारों के आरोप में प्रतिबंध लगा दिया था। अध्ययन में कहा गया है कि 1990 के दशक में भाजपा की सरकार द्वारा प्रश्रय देने के साथ ही आरएसएस की भूमिका और प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। इस अध्ययन में पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को 'साफ्टलाइनर' तथा लाल कृष्ण अडवाणी को 'हार्ड लाइनर' बताया गया है। अध्ययन में खासकर उग्र इस्लामिक आंदोलनों पर किये गये अध्ययन के साथ ही भारत में आरएसएस, इज़राइल में गुश इमोनीम, ईसाइयों में आईडेनटीटी मूवमेंट और इस्लाम में अल–कायदा का जाल विश्व में फैला हुआ है। इसी अमरीकी अध्ययन के आधार पर एक निष्कर्ष निकलता है कि अगर आरएसएस एक उग्रवादी धार्मिक विचारों पर आधारित संगठन है जो घृणा और पृथकतावाद को बढ़ावा देता है तो भाजपा अपने आप घृणा और पृथकतावाद को बढ़ावा देने वाली पार्टी हो जाती है क्योंकि संघ ही भाजपा की विचारधारा और दिशा तय करता है। इसलिये भाजपा सांप्रदायिकता फैलाने वाली, अल्पसंख्यक विरोधी और कट्टर हिंदुत्ववादी पार्टी है। यही वजह है कि जहां–जहां भाजपा शासन कर रही है वहां–वहां सांप्रदायिकता को राज्यस्तर पर बढ़ावा मिल रहा है। अल्पसंख्यक और दलित विरोधी नीतियां लागू की जा रही हैं, और समाज को 'हम' और 'वो' में बांटा जा रहा है। जिन राज्यों में भाजपा शासन नहीं कर रही है वहां संघ परिवार और भाजपा सांप्रदायिकता का ज़हर फैला रहे हैं।

एक तरफ आडवाणी संघ को कहते हैं कि भाजपा के आंतरिक मामलों और विचारधारा के स्तर पर दखल न दे और 5 जुलाई 2005 के अयोध्या में हुए आतंकवादी हमले के बाद, जिसे अर्धसैनिक बलों ने पूरी तरह नाकामयाब कर दिया था, आडवाणी ने कहा कि अयोध्या में भव्य राम मंदिर बनने पर ही देश को संतोष होगा। आडवाणी की इस सभा का, जिसमें आडवाणी ने ऊपर लिखे शब्द कहे, अयोध्या के साधु–संतों ने तो बहिष्कार किया ही साथ ही जनता ने भी पूरी तरह उपेक्षा की। ताज्जुब तो इस बात का है कि इस सभा में मीडिया और सुरक्षा कर्मियों की भीड़ भाजपा के कार्यकर्ताओं से ज्यादा थी। ये बात याद रखने लायक है कि 6 साल के अपने राज में भाजपा–राजग सरकार ने एक बार भी राम मंदिर बनाने की बात नहीं की।

ऐसा नही है कि भाजपा–राजग राज के दौरान सांप्रदायिकता कम हो गयी थी। सच तो यह है कि इसी राज के दौरान भाजपा

की गुजरात सरकार द्वारा प्रायोजित और भाजपा–राजग केंद्र सरकार समर्थित गुजरात जनसंहार घटा जिसे आज भी देश भूला नहीं है। केंद्र सरकार में विपक्ष में आने के बाद भी भाजपा सांप्रदायिकता को बढ़ावा दे रही है। भाजपा शासित राज्यों में सरकार और प्रशासन की मिलीभगत से सांप्रदायिकता तेज़ी से बढ़ रही है जो एक गहरी चिन्ता का विषय है। नीचे लिखे उदाहरणों से साफ हो जायेगा कि संघ की विचारधारा से प्रतिबद्ध भाजपा कैसे सांप्रदायिकता का ज़हर घोल रही है और समाज का हिंदुकरण कर रही है, दलित मुस्लिम और महिला विरोधी नीतियों को अंजाम दे रही है।

छत्तीसगढ़ : भाजपा शासित राज्य छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में कुछ हिंदुवादी संगठनों के कार्यकर्ताओं ने एक धर्मस्थल में धर्मान्तरण होने का आरोप लगाकर हंगामा मचाया। धर्मसेना नाम के इस संगठन ने एक चर्च के सामने प्रदर्शन किया और प्रार्थना–अर्चना को रोक दिया। जबसे भाजपा का शासन आया है छत्तीसगढ़ में आदिवासी बहुल इलाकों में सांप्रदायिककरण बढ़ रहा है।

गुजरात : गुजरात में राजकोट में भाजपा में असंतुष्ट दलितों ने कांग्रेस द्वारा आयोजित दलित सम्मेलन में भाग लिया। भाजपा के विधायक सिद्धार्थ परमार ने दलित महापंचायत समिति के बैनर तले ये सम्मेलन आयोजित किया जिसमें अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने और दलिस्तान के नाम से अलग राज्य की माँग के प्रस्ताव पारित किये। सम्मेलन में कहा गया कि गुजरात सरकार दलितों के वैलफेयर संबंधित कोई भी कार्यक्रम लागू नहीं कर रही है। शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी नौकरियों में उनका कोटा नहीं भर रही है। सम्मेलन के बाद रैली में परमार ने साफ–साफ कहा कि मोदी दलित विरोधी हैं और इसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ेगी।

मध्य प्रदेश : मध्य प्रदेश में जबसे भाजपा सरकार आयी है हिंदुवादी संगठनों का रोज़ नया चेहरा सामने आ रहा है। नये साल के स्वागत के लिए आयोजित कार्यक्रम और वैलेनटाइन डे बजरंग दल हर बार बर्बाद करता है। इस दशहरे पर बजरंग दल के प्रदेश मंत्री ने मुसलमानों को गरबा और डांडिया में हिस्सा न लेने देने का ऐलान कर दिया। कई ज़िलों में प्रतिबंध लागू कर दिया और इसमें दुर्गावाहिनी ने सक्रिय साथ दिया है। ज़्यादा चिंताजनक बात है कि जिला प्रशासन इनकी मदद कर रहा है।

भाजपा की मध्य प्रदेश सरकार ने सरकारी कर्मचारियों के लिये 'वंदे मातरम' गायन कम्पलसरी कर दिया है। हालांकि कि कानून मंत्रालय का कहना है कि 'वंदे मातरम' का गाना कानूनी तौर पर कम्पलसरी करना गलत होगा। सरकार ने राज्य के सचिवालय और ज़िला अधिकारियों के आफिसों में कम्पलसरी कर दिया है और अब बजाये हर रोज़ के महीने की पहली तारीख को ही गाया जायेगा। कांग्रेस के भूतपूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने गैर कानूनी और असंवैधानिक फैसले का समर्थन किया है। भाजपा शासित मध्य प्रदेश धार्मिक स्वतंत्रता कानून 1968 में सुधार लाने की कोशिश कर रहा है। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस नरेंद्र प्रसाद ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि झबुआ जिले में 1991–2001 के बीच ईसाई जनसंख्या 80 प्रतिशत बढ़ी है। विहिप कार्यकर्ताओं ने आरोप लगाया था कि झबुआ में धर्मांतरण हो रहा है।

राजस्थान : भाजपा की राजस्थान सरकार इतनी सांप्रदायिक हो चुकी है कि राजस्थान की जमात–ए–इस्लामी हिंद ने अपने एक बयान में कहा है कि भाजपा सरकार प्रशासनिक तंत्र को संघ परिवार का एजेंडा आगे बढ़ाने के लिये इस्तेमाल कर रही है और कमज़ोर वर्गों, अल्पसंख्यकों और दलितों पर अत्याचार कर रही है। फासीवादी और सांप्रदायिक ताकतों को प्रशासन सुरक्षा प्रदान कर रहा है। बयान में कहा है कि भाजपा सरकार ने आते ही त्रिशूल बांटने पर से बैन हटा लिया। उदयपुर जिले के सारडा गांव में सांप्रदायिक दंगों से पीड़ित मुसलमानों को अभी तक डराया, धमकाया और सताया जा रहा है। भीलवाड़ा जिले के कई गांवों में मुसलमान आज अपने को असुरक्षित महसूस करते हैं। पाठ्यपुस्तकों में इस्लाम धर्म के बारे में झूठ बताया जा रहा है और इस्लाम के पैगम्बरों के लिये अशोभनीय शब्द इस्तेमाल किये गये हैं। कोटा और जोधपुर ज़िलों में ईसाइयों पर हमले हो रहे हैं। पाली और भीलवाड़ा में दलितों को सताया जा रहा है। किसान आंदोलन को ताकत से दबाया गया।

25 जून से आयोजित उदयपुर में सेंट एन्ड्रयूज़ चर्च द्वारा आयोजित एक युवा फेस्टिवल को विहिप और बजरंग दल के कार्यकत्ताओं ने होने नहीं दिया। आयोजन के पहले ही दिन विहिप और बजरंग दल के कार्यकत्ताओं ने फेस्टिवल को यह कह कर चलने नहीं दिया कि फेस्टिवल के नाम पर धर्मान्तरण हो रहा है। 24 जून को ये फेस्टिवल प्रार्थना और आध्यात्मिक सत्संग के बाद शुरू हुआ जिसमें बंसवाड़ा, उदयपुर और बीकानेर से करीब 70 सहभागी आये थे जिनमें कुछ महिलाऐं और बच्चे भी शामिल थे। विहिप और बजरंग दल के कार्यकत्ताओं ने एक दम्पति को पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस ने उन्हें बिना किसी प्राथमिकी के हिरासत में ले लिया। यही नहीं स्थानीय पुलिस और प्रशासन ने भाजपा सरकार के दबाव और आदेश पर फेस्टिवल आयोजन करने की इजाज़त भी 'प्रीकॉशनरी' मेजर बता कर रद्द कर दी। इससे पहले भी इसाईयों के एक प्रशिक्षण शिविर को भी भाजपा ने धर्मान्तरण के नाम पर नहीं होने दिया था। सबसे ज़्यादा चिन्ता की बात तो यह कि पुलिस और प्रशासन विहिप और बजरंग दल के कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ प्राथमिकी तक भी दर्ज नहीं करते।

भाजपा की राजस्थान की बस्सी तहसील में निमोड़ा नामक गांव में एक दलित परिवार द्वारा हनुमान मंदिर बनाने और हनुमान की पूजा करने की वजह से उन पर पिछले दो सालों से तरह–तरह के जुल्म किये जा रहे हैं। सवर्ण हिंदू उनको सार्वजनिक पम्प से पीने का पानी नहीं लेने देते, उन्होंने उन पर 21,000 रुपये का जुर्माना लगाया है और पुलिस उनकी शिकायत दर्ज नहीं कर रही है। सवर्णों का कहना है कि दलितों को न तो हनुमान मंदिर बनाने का और न ही हनुमान की पूजा करने का हक है।

मुसलमानों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्तर के अध्ययन के लिये प्रधानमंत्री द्वारा गठित एक हाई पावर्ड कमेटी ने अपने तीन दिन के दौरे के बाद राजस्थान की भाजपा सरकार को अल्पसंख्यकों से जुड़े वेलफेयर प्रोग्रामों को न लागू करने का दोषी ठहराया है। कमेटी ने कहा हालांकि कुछ योजनाओं के लिए न तो कोई वित्तीय सहायता और न ही किसी किस्म के संरचनात्मक सहायता की ज़रूरत थी फिर भी मुसलमानों के लिये सरकार ने कोई भी वेलफेयर प्रोग्राम लागू नहीं किये। कमेटी ने कहा बहुप्रचारित

अल्पसंख्यकों के लिए 15 सूत्री कार्यक्रम राजस्थान में बिल्कुल भी लागू नहीं किया गया है। राज्य में मुसलमान अपने आप को बहुत ही असुरक्षित महसूस कर रहे हैं और कुछ शहरों में तो सामाजिक और आर्थिक तौर पर पूरी तरह बहिष्कृत हैं। भीलवाड़ा ज़िले में मंडल और करजलिया मंडलों में मुसलमान पूरी तरह बहिष्कृत हैं और उन्हें इस साल बदिया दरगाह पर उर्स भी नहीं करने दिया गया। ज़्यादातर मुसलमान गरीब, बेरोजगार और पिछड़े हुए हैं और सभी मुसलमान सांप्रदायिक हिंसा के शिकार हैं। पिछले साल कुल मिलाकर मुसलमानों के वेलफेयर प्रोग्रामों पर सिर्फ तीन करोड़ रुपये खर्च किये गये। कोई नहीं जानता कि इसका लाभ किसको हुआ। कमिटी ने कहा कि बड़े और छोटे सार्वजनिक और निजी बैंक उन मुसलमानों को जो मुस्लिम प्रधान बस्तियों में रहते हैं उधार नहीं दे रहे हैं। मुसलमानों को गैर मुस्लिम मुहल्लों में जायदाद खरीदने नहीं दी जाती नतीजा सबको दड़बों (घेटोज़) में रहना पड़ रहा है। जहां तक शिक्षा का सवाल है 1.20 लाख मुसलमान जहां रहते हैं वहां जयपुर के आऊटस्कर्ट्स पर सिर्फ एक प्राइमरी स्कूल है जिसकी इमारत बहुत ही खस्ता हाल में है और स्कूल में शिक्षक भी पूरे नहीं है। मुसलमानों को सर्व शिक्षा अभियान से जान बूझकर बाहर रखा गया। मुसलमानों के अपने शिक्षण संस्थान खोलने को इजाज़त नहीं दी जाती। उनके रहने के इलाकों में साफ–सफाई का कोई इंतजाम नहीं हैं और नालियों का अभाव है। इस कमिटी के अध्यक्ष दिल्ली हाईकोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस राजेंद्र सच्चर हैं।

सपा द्वारा शासित प्रदेश में भाजपा के मऊ ज़िले में सांप्रदायिक हिंसा हिंदू महासभा और भाजपा के गोरखपुर से सांसद योगी आदिनाथ ने करवाई। मऊ से स्वतंत्र विधायक का आरोप है कि ज़िला प्रशासन ने 48 घंटों तक मऊ शहर को जलने दिया। ज़िला प्रशासन ने भाजपा विधायक रामजी सिंह भाजपा के गोरखपुर से सांसद और हिंदू युवा वाहिनी के कार्यकर्ताओं के खिलाफ एफआईआर दर्ज की है। इस दंगे में सात आदमी मारे गये और 36 घायल हुए। राज्यपाल ने स्थिति को गंभीरता से लेते हुए मऊ का दौरा किया और मुख्यमंत्री को तलब किया। कर्फ्यू को पूरी तरह उठाने में एक महीने से ज़्यादा लग गया।

उत्तर प्रदेश के एटा ज़िले में 70 गांवों के 1800 धर्मांतरित ईसाइयों की विहिप और धर्म रक्षा समिति के बैनर तले घर वापसी करायी गयी और उन्हें हिंदू बनाया गया। इससे पहले एटा में ही इसी साल 5000 ईसाई हिंदू धर्म में लौटे थे वो भी विहिप और धर्म रक्षा समिति के बैनर तले।

ऊपर लिखे से साबित हो जाता है कि आडवाणी, वाजपेयी और कम्पनी द्वारा आरएसएस के खिलाफ दिये गये बयानों और चेतावनियों के बाद भी भाजपा विचारधारा के स्तर पर राम मंदिर, गोहत्या प्रतिबंध, मुस्लिम विरोधी नीतियों पर कायम है और साथ ही ये भी साबित हो जाता है कि राष्ट्रीय प्रेस का एक तबका भाजपा को नई छवि देने पर आमादा होने के बावजूद भी अपने इरादों में नाकाम हो गया है क्योंकि भाजपा की नीतियों का वैचारिक आधार आज भी आरएसएस की सोच में निहित है। तथाकथित ''लौह पुरुष'', 'विकास' पुरुष या 'सन्यासिने' कितने भी बयान दें कि आरएसएस को पार्टी के आंतरिक मामलों में दखल नहीं देना चाहिये ये सब जनता को दिशाभूल करने के लिये हैं। भाजपा की हिंदुत्व विचारधारा एक बंद संगठन से उपजी विचारधारा है। ऐसे संगठन सारी दुनिया में सक्रिय हैं जिनका ज़िक्र हमने रेंड कार्पोरेशन के अध्ययन के माध्यम से किया है। भाजपा के दूसरे हमदर्द और सहयोगी संगठनों विहिप और बजरंग दल के कारनामों और कार गुज़ारियों की तुलना अमेरिका और यूरोप में उभरे उन नव नाज़ीवादी और नस्लीय श्रेष्ठतावादी संगठनों से की जा सकती है जो अपने से अलग धार्मिक समुदायों के अनुयायियों के खिलाफ बेहद संकीर्ण रवैया अपना रहे हैं। आज फिलीस्तीन में यहूदी और मुसलमानों के बीच बिगड़ते संबंधों के पीछे ऐसी ही अंध राष्ट्रवादी ताकतें हैं। संघ परिवार को हमें पूरी दुनिया के स्तर पर उभरी इस नव फासीवादी राजनीति के भारतीय संस्करण के रूप में देखना चाहिये क्योंकि संघ अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये हिंदूधर्म, हिंदुत्व और अतिराष्ट्रवाद का इस्तेमाल करता है।

भाजपा के मीडिया और प्रेस में उदारवादी हमदर्दों को समझना चाहिये कि इस विश्वव्यापी राजनीतिक उभार और भाजपा–आरएसएस के बीच एक संबंध है और भाजपा को बदलने की कोशिशें नाकाम ही रहने वाली हैं। भाजपा आरएसएस के संगठन और कार्यकर्ताओं पर पूरी तरह निर्भर है और इसलिये हिंदुत्व की विचारधारा से जुड़े रहने के लिये शापित है। आडवाणी, वाजपेयी, उमा भारती और सुधीन्द्र कुलकर्णी की आरएसएस से आज़ाद होने के बयान सिर्फ जनता को बहकाने और धोखा देने के लिये हैं। **ये एक बहुत ही तसल्लीदायक तथ्य है कि भाजपा अपने सांप्रदायिक, कट्टरवादी और फासीवादी चरित्र और स्वभाव से जुड़ी रहेगी और दूसरी बात जो ज़्यादा अहम है वो ये कि भाजपा के पास अब ऐसे नेता नहीं हैं जिनका कुछ भी जनाधार है। वाजपेयी अपनी बीमारी की वजह से बिहार में चुनावी अभियान में नहीं जा पाये। आडवाणी कोई ज़्यादा भीड़ नहीं जुटा पाये। ऐसी स्थिति में संगठित–असंगठित और गैर–सरकारी लोकतांत्रिक, प्रगतिशील और वामपंथी ताकतों की ये ज़िम्मेदारी है कि इस फासीवादी ताकत का मुकाबला करने के लिये जनआंदोलन करें और अपने–अपने स्तर पर जनजागरूकता अभियान चलाएँ।**

ज़िन्दगी की कगार पर ... क्या सच–क्या सही ?

–जुही

पहली औरत – ''मैं तीन भाइयों के लिए खाना पकाती हूं। तीनों के कपड़े धोती हूं। और तीनों के साथ मेरे शारीरिक संबंध हैं। बहुत पूछने पर उसने बताया। ''मैं बंगाल के मिदनापुर ज़िले की रहने वाली हूं। एक दलाल ने बीस हजार रुपयों में मुझे बेच दिया था। पूरे चार साल हो गये हैं। मुझे नया घर, नया शहर मिला। पुराने रिश्ते–नाते छूट गये। अब तो मैं भी सबको भूल चुकी हूं। यादें धूमिल पड़ गई हैं । पर मन में टीस अभी भी उठती है।''

दूसरी औरत – मेरा शौहर लंगड़ा है। मुझसे पच्चीस साल बड़ा भी। यहां गांव में अच्छी जोरू नहीं मिल पा रही थी। उसने पन्द्रह हज़ार रुपयों में मुझे मोल ले लिया। पति से तन का मेल हुआ पर मन कोसों दूर था। साल भर बाद एक बेटा भी हो गया। बच्चे को देखा तो सोचा इसके सहारे जी जाउंगी। छः महीने सब कुछ ठीक रहा। फिर शौहर ने मुझे अपने चौदह साल के देवर के साथ संबंध बनाने को कहा। मैं हक्की–बक्की रह गई। साफ़ इंकार कर दिया। पर शौहर ने धमकाया, ''यदि तू राजी है तो ठीक है नहीं तो... अगर मेरे भाई का निकाह हो गया तो ज़मीन की बंटाई हो जाएगी। अरे सब भूखे मर जायेंगे। मैं हार कर राज़ी हो गई।''

तीसरी औरत – ''मुझे और मेरी जेठानी को अपने ससुर को खुश रखना पड़ता है। दो साल पहले सास गुज़र गई। घर की हालत पहले ही खस्ता थी। उस पर ससुर ने दोबारा शादी के लिए इश्तहार दे दिया। जेठ और पति सकते में आ गये। फिर दोनों ने हमें समझाया हमें ससुर को शादी करने से रोकना होगा। अगर चाहते हैं कि घर की जायदाद घर में ही बनी रहें तो ससुर को वश में करना ही होगा। पहले तो हम बहुत हिचकिचाए। ज़िल्लत तो बहुत हुई पर हमारी तीन एकड़ ज़मीन का सवाल था।''

मैं पंजाब के मनसा जिले में थी। और पिछले एक घंटे में तीन औरतों से मिली थी। तीनों औरतें तीन अलग–अलग वर्ग और तबके से ताल्लुक रखती थी। पर हैरतअंगेज़ बात यह थी कि तीनों की ज़िंदगी में कितनी समानता थी। और तीनों ही औरतों ने बेहद सहजता से अपनी ज़िंदगी के इस पहलू को मेरे सामने उघाड़कर रख दिया था। एकदम सपाट और सटीक चेहरे। भावना विहीन शब्द। बस शब्दों के पीछे छिपे दर्द और आक्रोश को शायद मैं समझने की कोशिश कर रही थी। और मैं ... मुझे तो जैसे सांप सूंघ गया था। एक बहुत ज़ोर का धक्का लगा था मुझे। मेरी मध्यम वर्गीय मानसिकता सब कुछ समझते–बूझते हुए इस सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पा रही थी। और सच कहूं तो मैंने शराफ़त और नैतिकता का लबादा ओढ़ लिया था। मेरा अहम मुझे कचोट रहा था पर मैंने खुद को इनसे और इन जैसियों से दरकिनार कर लिया था।

एक भारी बोझ मन पर लिए मैं अपने दूसरे पड़ाव के लिए निकल पड़ी। हिमाचल के सिरमौर ज़िले में पहुंचकर मैंने राहत की सांस ली। पर यहां भी कुछ अजीबो–गरीब हालात देखने को मिले।

जिस डाक बंगले में मैं ठहरी थी उसके चौकीदार की पंद्रह साल की बेटी मुझे मिली। बातों ही बातों में उसने बताया कि उसका पति बहुत बीमार है। देखभाल के लिये वह अपनी पहली पत्नी के पास गया हुआ था।

तो क्या तुम दूसरी बीबी हो ? मैंने पूछा। हां, मेरी शादी दो साल पहले हुई थी। पिता के पास दहेज के लिए पैसा नहीं था। मेरे पति को देखभाल करने के लिए एक औरत की ज़रूरत थी। उसने मुझे खरीद लिया। अच्छा आदमी है। मुझे ठीक–ठाक रखता है।

कुछ और लोगों से मिली तो पता चला इस इलाके में यह एक आम चलन है। सामाजिक पिछड़ेपन और गरीबी के चलते लड़कियों को बेचना बुरा नहीं समझा जाता। यह लड़किया पंजाब और हरियाणा के उम्रदराज़ या कामकाज करने में असमर्थ पुरुषों द्वारा खरीदी जाती हैं। कुछ विकलांग पुरुषों के साथ भी रहती है।

पंद्रह से पचास हजार रुपये तक में यह सौदा तय होता है। लड़कियों की बुजुर्गों से ''शादी'' कर दी जाती है। अधिकांश समय यह लड़कियां इन पुरुषों की दूसरी पत्नी बनती हैं। नतीजतन न तो घर में इनका रुतबा रहता है। न ही ज़िंदगी आसान होती है और ना ही कोई कानूनी हक़। आर्थिक स्थिति चाहे बेहतर हो जाती है पर सामाजिक दर्जा वही रहता है। शादी के कुछेक साल बाद कुछ तो वापस घर आ जाती हैं। पर काफ़ी लड़कियां ''लापता'' भी हो जाती हैं।

पंजाब और हिमाचल दोनों ही राज्यों में यह ख़रीद–फरोख़्त का धंधा दलालों और बिचौलियों के सहारे चलता है। दलाल ज़रूरतमंद परिवारों के लिए ''लायक'' वर ख़रीददार ढूंढ कर लाते हैं। बदले में उन्हें मोटी कमीशन मिलती है। लड़की के परिवारों को रुपये और खरीददारों को सुघड़ बीवी मिल जाती हैं। सब कुछ खुशी और आराम से निपट जाता है। बस घुटती रह जाती है तो मूक लड़कियां। न तो इनसे कुछ पूछा जाता है, न कुछ बताया जाता है। यह तो बस जानवर की तरह एक खूंटे से दूसरे खूंटे तक खदेड़ दी जाती हैं। बेचने–खरीदने के इस सिलसिले को एक मौन सामाजिक स्वीकृति मिली हुई है। इससे इस व्यापार को और बढ़ावा मिलता है।

मैं सोचने पर मजबूर हो गई। आखिरकार औरतों व लड़कियों के मानसिक व शारीरिक शोषण के लिए कौन जिम्मेदार है। मुख्यतः देखने को मिला कि इस सबके पीछे गरीबी व आर्थिक कमज़ोरी सर्वोपरि हैं। पहले परिवार बड़े व संयुक्त हुआ करते थे। ज़मीन सांझी और हरी भरी। उपजाऊ ज़मीन, भरपूर अनाज और खुशहाल परिवार। एक परिवार में लगभग पचास–साठ एकड़ ज़मीन। फिर औद्योगिकरण का दौर आया। ज़मीन की उर्वरता कम होने लगी। आमदनी घटने लगी और वैकल्पिक काम की तलाश में परिवार से लोग शहरों की ओर पलायन करने लगे। बची–सही कसर ज़मीन

का हिस्सा बांट होने से जाती रही। अब छोटे–छोटे दो–दो, चार–चार एकड़ के टुकड़ों के सहारे गुज़र बसर होने लगी। इन छोटे टुकड़ों पर पूरे परिवार की खुशहाली निर्भर है। तीन चार भाइयों के घर इसी पर चलते थे। ऐसे हालात में स्वार्थी हो जाना बहुत ही साधारण सी बात है। रोज़गार के दूसरे साधनों की कमी ने आर्थिक परेशानियों को ओर हवा दे दी।

औरत और ज़मीन दोनों में बहुत सी समानताएं हैं। दोनों उर्वर हैं और दोनों का शोषण और उपयोग किया जाता है। ज़मीन की कीमत घटी और औरत का दर्जा बद से बदतर हुआ। इस खामी का खामियाज़ा औरत को भुगतना पड़ा। ज़मीन के टुकड़े को बचाने के लिए औरत बंटने लगी। उसका शरीर, उसका श्रम बंटने लगा। परिवार और समाज दोनों की इज्ज़त बरकरार रखने के लिए ज़मीन और औरत दांव पर लगा दी गई।

पंजाब व उत्तर भारत के इलाकों में ज़मीन एक सामाजिक सत्ता का प्रतीक है। कोई भी किसान अपनी बेटी की डोली ऐसे घर नहीं भेजता जहां कम से कम पांच एकड़ ज़मीन की मिल्कियत न हो। लिहाज़ा कम जायदाद वाले पुरुष कुंवारे रह जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में ये पुरुष दूरदराज़ के इलाकों से गरीब घरों की लड़कियां ख़रीद लाते हैं। या फिर दो–तीन भाई एक ही औरत आपस में बांट लेते हैं। अगर तीन–चार भाई एक औरत और एक टुकड़ा ज़मीन आपस में बांटकर रखेंगे तो बंटवारे का सवाल ही कहां उठता है। घर की जायदाद घर ही में रहेगी। यह रिवाज घर की चारदीवारी के अन्दर पनपता रहता है। समाज और समुदाय के दामन पर इस नाइंसाफी के छींटे तक नहीं पड़ते, दाग–धब्बे तो बहुत दूर की बात है।

मुझे लगा मेरा दम घुट रहा है। कितनी हैरानी की बात है कि महज सुनने–समझने से ही मैं घुटने लगी थी। फिर जो औरतें इस तपिश को झेल रही होंगी उनके सीले मन की नमी को कौन सोखेगा ? वाकई इन गांवों की औरतें व लड़कियां एक पेशोपेश के दौर से गुज़र रही हैं। वाकई में उनके पास कोई विकल्प है ही नहीं। वह अपने मायके वापस नहीं जा सकती क्योंकि मां–बाप समझौता करने की ताकीद करते हैं। फिर स्थिति चाहे बिकने की हो, एक बूढ़े, विकलांग को अपना शौहर मानने की हो या फिर दो–तीन भाइयों की साझी पत्नी बनकर जीवन काटने की हो सभी हालात में मजबूरी, विवशता और समाज का मौन समर्थन जैसे इन औरतों की विरासत है।

और इस प्रथा के लिए औरत को राज़ी करना कोई खास मुश्किल काम नहीं है। मान, मनुहार, दुखों की दुहाई, उलाहना, ताने, इज्ज़त और मज़बूरी का दंभ, फ़र्ज की दहलीज और न जाने क्या–क्या कोई भी हथियार काम में लाए जा सकते हैं। और अगर फिर भी बात नहीं बनी तो ज़ोर–जबर्दस्ती, मार–पीट, डरा–धमकाकर औरत को वश में कर लिया जाता है।

मैं सोच रही थी क्या क़ानूनी ढंग से इस स्थिति को काबू में लाया जा सकता है ? पर शायद इसे गैर क़ानूनी करार देना नामुमकिन था। इन समुदायों में विधवा औरत की दोबारा शादी करने का चलन तो है। पर परिवार के बाहर शादी करने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता। ऐसा होना ज़मीन के बंटवारे का सीधा कारण बन जाता है। लिहाज़ा परिवार ''चादर'' डालने की रीति को अपनाते हैं। विधवा की शादी जेठ, देवर, ससुर किसी के भी साथ करवा दी जाती है।

पितृसत्तात्मक समाज में लड़कियों और औरतों के इस शोषण को आर्थिक तंगी, इज्ज़त और फ़र्ज का जामा पहना कर ढक दिया जाता है। स्वार्थ की दीमक इन खोखले परिवारों को और कमज़ोर बनाती जाती है और ज़मीन के छुटपुट टुकड़ों के लालच में परिवार खुशहाली और राहत की बेदी पर औरत की बलि चढ़ाते रहते हैं।

थोड़ा और कुरेदा तो समझा कि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश जैसे समृद्ध राज्यों में दिन–प्रतिदिन गिरते हुए स्त्री–पुरुष अनुपात भी इस समस्या के लिए कारगर साबित हुए हैं। एक तरफ तो लड़कियां गर्भ परीक्षण तकनीकों के द्वारा मारी जा रही हैं तो दूसरी ओर गरीबी और आर्थिक कारणों की आड़ मैं लड़कियां व औरतें खरीदी–बेची जा रही हैं। लड़कियों की इस घटती संख्या के लिए उपभोक्तावादी माहौल भी ज़िम्मेदार है जो दहेज प्रथा को बढ़ावा देता है। दो जून खाना न जुटा पाने वाले परिवार दहेज की रकम कहां से जुटाएंगे।

मैंने सवाल किया, पर अगर इस तरह लड़कियों की संख्या कम होती जाएगी तो परिवार और वंश आगे कैसे बढ़ेंगे ? आखिर सभी लड़के तो एक साझी औरत के साथ गुज़ारा करने का एक मात्रा रास्ता तो इख़्तियार नहीं करते ? पता चला कि इसी वजह से औरतों व लड़कियों की नीलामी भी की जाती है। गांव में ख़रीदने–बेचने के लिए मंडियां लगती हैं। इन मंडियों में देश भर के पिछड़े इलाके के गरीब परिवारों की लड़कियां लाई जाती हैं। जो नई–नवेली दुल्हन चाहते हैं वह ऊंची से ऊंची बोली लगाकर औरत खरीद लेते हैं।

मैं अब एक असमंजस में पड़ गई थी। मायूसी और असहाय महसूस कर रही थी। क्या करूं, क्या न करूं। इन तमाम तथ्यों ने मुझे झकझोर कर रख दिया था। फिर मैंने पूछना शुरू किया, ''क्या औरत वास्तव में इतनी कमजोर और असहाय होती है ? वह क्यों सब चुपचाप सहती रहती है ? आख़िर जानवर भी सताने पर काटने लगते हैं। औरतें विद्रोह क्यों नहीं करतीं। अपनी आवाज क्यों नहीं उठातीं। मन में आक्रोश और गुस्से के ज्वालामुखी का लावा कब तक बाहर नहीं आएगा ?

मैं अटकलें लगा रही थी – कोई भी परिवार अपनी लड़की बेचने को कैसे तैयार हो जाता है। शायद इसलिए कि पेट की आग इंसानियत के जज़्बे से ज्यादा भड़क उठती है। हालात जजबातों, रिश्तें–नातों, को अपने आगोश में समेट लेते हैं। ऐसे में हम सबसे पहले उस वस्तु को दांव पर लगाते हैं जिसकी कीमत हमारी नज़र में सबसे कम होती है। इनमें आते हैं पशु, ढोर–ढंगर। फिर बारी आती है लड़की, औरत की। समाज की नज़र में औरत की कीमत कम है। उसका दर्ज़ा दोयम है। वह केवल एक उपभोक्ता के रूप में जानी जाती है। उसे एक उत्पादक, एक आर्थिक साधन मुहैया कराने वाली का दर्जा नहीं दिया जाता। औरत के ऊपर सैकड़ों नैतिकता, अनैतिकता के पहरे लगाने वाला समाज और परिवार इन्हीं फायदों के चलते इन मामलों में अपना पल्ला झाड़कर अलग हो जाता है। खूद को तटस्थ और दरकिनार कर कसौटी पर औरत को कस देता है।

मेरे अंर्तमन में एक तूफान सा उठा था। अपमान, अवहेलना,

शेष पृष्ठ 19 पर.....

पारम्परिक लोक ज्ञान और साझी विरासत

—नीलम

मानव विकास की अपनी एक प्रक्रिया रही है। जिसमें उसने धीरे–धीरे अपना विकास अपनी जरूरतों के हिसाब से किया। इसमें शायद उसने सबसे पहले आपस में एक दूसरे के साथ अपने विचारों को बांटने के लिए बोलियों का निर्माण किया हो और उसके बाद भी जब उसके जिज्ञासु मन को शांति नहीं हुई तो उसने भाषा को परिमाणित करने के लिए शब्दों को भी निर्मित किया हो। विचारों के आदान–प्रदान के साथ जैसे–जैसे मानव आवश्यकतायें बढ़ती गयीं उसने अपने काम को और सुन्दर और सरल बनाने के लिए नई–नई खोजें की उसने जंगलों से निकलकर कृषि कार्य करना शुरू किया, खेती के कामों में मदद के लिए पशुओं को पालना शुरू किया इससे उसने दो फायदे लिए पहला फायदा दूध जिसका इस्तेमाल उसने खुद के लिए किया और दूसरा फायदा गोबर जिसका इस्तेमाल उसने खेतों में करके कृषि उत्पादन को बढ़ाया।

मानव की इन खोजों का सिलसिला पाषाण युग से आज तक चला आ रहा है। जहां तक मानव ने अपनी जरूरतों के लिए खोज की वहां तक तो वह काफी खुश रहा परन्तु जैसे–जैसे उसके अन्दर ज्यादा इकट्ठा करने के विचार आने लगे तथा उसके अन्दर स्वार्थ जैसा एक भाव पनपने लगा, वहीं से शुरुआत हुई लड़ाई–झगड़ों, युद्धों की प्रत्येक शक्तिशाली कबीला अपने से कमजोर कबीले पर युद्ध द्वारा अपना पूर्ण अधिकार बना लेता, इस तरह से जीते हुए कबीले और हारे हुए दोनों कबीलों की संस्कृति मिलाकर एक नयी संस्कृति बनती रही ।

वैसे भी संस्कृतियों का इतिहास ऐसा ही रहा है। ''ये हमेशा परिवर्तनशील रही हैं, ये समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं इसमें बदलाव अवश्यम्भावी है। यदि ये हमेशा एक जैसी बनी रहेंगी तो मनुष्य की विकास प्रक्रिया भी रुक जायेगी जैसे एक जगह जमा पानी खराब हो जाता है, उसी प्रकार संस्कृति के ठहराव से उसको लागू करने वाले लोग भी विकास प्रक्रिया की दौड़ से छूट जाते हैं'', प्रत्येक संस्कृति अपने देश, काल और परिस्थितियों के हिसाब से काफी अच्छी होती है। जब भी कोई नई संस्कृति उभरती है तो हमेशा पुराने के साथ कुछ नये आयाम जुड़ जाते है। और कुछ नया पैदा होता है।

नये के साथ कुछ नये आयाम जुड़ जाते हैं। और कुछ नया पैदा होता है। परन्तु नये के नाम पर ये नहीं करना है कि पुराने या लोगों से जुड़ी संस्कृति को खत्म कर दिया जाये, किसी को खत्म करके नया गढ़ना खत्म होने वाले के साथ सरासर नाइंसाफी है। प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति का अपना एक लोक ज्ञान होता है।

और इसी के आधार पर वहां की संस्कृति का निर्माण होता है। ये लोक ज्ञान मनुष्यों की जरूरतों से निकलकर आता है। इस ज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है, कि इस ज्ञान से लोगों के बीच मतभेद बढ़ते नहीं हैं, बल्कि आपसी प्रेम बढ़ता है। क्योंकि ये ज्ञान जरूरतों से निकलकर आता है, इसलिए इसका उपयोग जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जाता है ना कि इसे बेचने के लिए। इस ज्ञान को सबके हित में बांटा जाता है। इसमें 'सर्वभूत हितेरतः' का समभाव छिपा हुआ रहता है। जहां पर भी मिल बांटकर खाने व रहने का भाव हो वहां कोई भी बुराई कभी पैदा नहीं हो सकती। बुराईयां वहां पैदा होती है जहां कुछ लोग सिर्फ अपना फायदा देखते हैं। एक दूसरे की देखा–देखी ये आग जंगल में लगी आग के समान इतनी तेजी से फैलती है, कि इसमें सब कुछ जलने की सम्भावना हो जाती है। आदमी का ईमान, दिलों का प्यार, दर्द, इंसानियत, भाईचारा सभी कुछ।

लोक ज्ञान और साझी विरासत दो अलग–अलग नाम तो दिखते हैं मगर हैं एक ही सिक्के के दो पहलू जो अलग–अलग दिखायी देने पर भी एक दूसरे से जुड़े हैं। हमने अपनी जरूरतों के लिए जो कुछ भी मिलजुलकर नया ईज़ाद किया, चाहे वह कृषि के क्षेत्र में रहा हो चाहे कला, विज्ञान के क्षेत्र में या खान–पान, पहनावे के क्षेत्र, में सब कुछ हमारा है साझा है, जमीन के टुकड़ों पर लकीरें खिंच जाने से, अलग देश अलग नाम होने से सब कुछ अलग नहीं हो सकता है। हमारा लोक ज्ञान, हमारी संस्कृति, हमारी साझी विरासत है। हम सभी के पूर्वजों ने इसको सजाने–संवारने में अपना योगदान दिया है।

आज जिसे भारतीयता के नाम से जाना जाता है, वह सब कुछ हमारी परम्परायें, हमारे रीति–रिवाज, हमारी संस्कृति, सब कुछ साझा है। इस संस्कृति को यदि हम विश्लेषित करके देखें तो पायेंगे कि इसे परिष्कृत करने में सभी जातियां, सभी धर्मों को मानने वाले लोगों का योगदान रहा है।

हमारा लोकज्ञान ही हमारी साझी विरासत का प्रतीक है, साथ ही ये हम सबको जोड़कर रखने वाला एक पुल भी है। सत्ता के भूखे राजनैतिक लोगों की आंखों में हमारी एकता का ये पुल हमेशा खटकता रहता है। क्योंकि राजनीति की रोटियां सेंकने के लिए इससे बढ़िया जगह और कहां हो सकती है। आज के कथित राजनेता कहे जाने वाले लोग सत्ता के लालच में लोगों के दिलों में धर्म के नाम पर नफरत फैलाकर तथा साझी विरासत के बारे में गलत–गलत धारणायें फैलाकर साझी विरासत को तो नष्ट करने का काम कर ही रहें हैं साथ ही साथ लोक कल्याण जैसी भावना को विकसित होने पर भी रोक लगा रहे हैं।

आज यदि हम सब समझते हैं, या देर से ही सही समझने लगे हैं। तो हमारा फर्ज बनता है कि हम सब नफ़रत की दीवारों को तोड़कर एक–जुट हों और समझें अपनी साझी विरासत (संस्कृति) के बारे में जो हमारी अक्षुण एकता का प्रतीक है और आज भी

इतिहास के रूप में हमें हमारी इस विरासत के बारे में बताता है, और याद दिलाता है उन लोक ज्ञान 'धारकों' की जिनके वाहक अब लुप्त होते जा रहे है। हमारी इस इन्द्रधनुषी साझी विरासत (संस्कृति) में आज कुछ और नया जोड़ने की जरूरत है जिससे इसके रंगों की चमक कुछ और बढ़े और पूरी दुनिया इससे संदेश ले सके एकता, भाईचारे, शक्ति सद्भावना और प्रेम का। इसलिए कबीर ने भी अपने दोहों में ढाई आख़र प्रेम का वर्णन इतने गहरे अर्थों में किया है :

पोथि पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय
ढाई आख़र प्रेम का पढ़े सो पंडित होय

यही ढाई आख़र है हमारी साझी विरासत और संस्कृति का दिल, जिगर और ज़ान।

लोक ज्ञान है क्या ? जरूरतों से निकला ज्ञान जिसके लिए कोई स्कूल, कॉलेज व विश्वविद्यालय की जरूरत नहीं होती। ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक देखकर सुनकर व स्वयं करके पहुंच जाता है। लोक ज्ञान के कई प्रकार हैं। इसको किसी निश्चित सीमा में नहीं बांध सकते। लोक ज्ञान, रहन सहन, स्वास्थ्य, खेती, खानपान, पहनावा, कला, संगीत, सब कुछ का अपना–अपना लोकज्ञान है। लोकज्ञान का जन्म होता है सबसे सीमान्त व्यक्ति द्वारा क्योंकि जब उच्च वर्ग एक निम्न वर्ग के लिए उन सुविधाओं को मुहैया नहीं कराता जो जीवन जीने के लिए जरूरी हैं तब सीमान्त लोग अपनी जिन्दगी को खुशहाल बनाने के लिए नई–नई वस्तुओं का निर्माण करते हैं। उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बनाने का ज्ञान ही लोक ज्ञान कहलाने लगता है और ये जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ जुड़ जाता है।

कभी–कभी लोकज्ञान से लोग अन्दाज लगाते हैं पिछड़ेपन का पुरानी रीति रिवाज़ों की कट्टरता का परन्तु ये सब इनसे अलग है लेकिन जब कभी लोक ज्ञान अंधविश्वासों के साथ जुड़ जाता है तो इसका स्वरूप विकृत होने की सम्भावना हो जाती है। लोक ज्ञान ज्यादातर लिखित रूप में संरक्षित नहीं होता है। ये लोगों के दिल और दिमाग में उनकी यादों के सहारे जिंदा रहता है जो प्रत्येक संस्कृति में लोकगीतों, कहावतों लोक संगीत, लोक कथाओं जीवन से जुड़े अन्य पहलुओं में दृष्टिगोचर होता है या यूँ कहें बिखरा रहता है। इसका प्रचार–प्रसार करने का एक ही तरीका है यानि मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को कथाओं, गाथाओं, गीतों के माध्यम से हस्तान्तरित करना। ये बिना किसी औपचारिकता के हस्तांतरित होता रहता है।

शेष पृष्ठ 24 पर.....

रंगोली – साझी विरासत का प्रतीक

–आई.एस.डी.

भारत में गाँवों में छोटे से त्योहारों से लेकर दीवाली तक रंगोली बनाने की परंपरा है। श्रद्धा और उल्लास व्यक्त करने वाली रंगोली खड़िया, मिट्टी और गेरु का घोल तैयार कर बनायी जाती है। चावल का घोल, चूर्ण और हल्दी से भी कुछ जगहों पर रंगोली का अंकन होता है। हमारे देश में गोबर–मिट्टी से लिपे मकानों में रंगोली की शैली ज़्यादा सुन्दर लगती है। अलग–अलग राज्यों में रंगोली की अलग–अलग शैलियाँ और नाम हैं। उत्तर प्रदेश में चौक, गुजरात और महाराष्ट्र में रंगोली, राजस्थान में माण्डणे, बिहार में अरियन, मध्य प्रदेश में चौक, बंगाल और असम में अल्पना, कुमाऊँ (उत्तरांचल) में ऐपण और दक्षिण भारत में इसे कोलम नामों से जाना जाता है। रंगोली में प्रमुखतः चौपड़, चौक, स्वास्तिक और श्रीपद के अलावा ज्योमेट्रीकल डिज़ाइन भी बनाये जाते हैं। सभी राज्यों में महिलाएँ और लड़कियाँ रंगोली बनाती हैं। आज सभी विषयों पर रंगोली बनती है। आजकल हर राज्य में रंगोली में प्रतिस्पर्धाएं आयोजित की जाती हैं। इस तरह से रंगोली की साझी विरासत आज भी जीवित है और पनप रही है।

पृष्ठ 6 का शेष.....

के सामने आत्मसमर्पण के सिवा देश के सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं था तो भी क्यों देश के विदेश मंत्री को आतंकवाद के गढ़ कंधार जाना पड़ा और खुद उन्हें आतंकवादी देने पड़े ? हाईजैकर्स और उनके मालिक शायद कभी नहीं चाहते थे कि भारत का विदेश मंत्री आतंकवादियों के सामने आत्मसमर्पण करके अपने आप को शर्मिन्दा करे। तालिबान के विदेश मंत्री, जो आज अमरीकी जेल में सड़ रहे हैं, के साथ कंधार एयरपोर्ट पर चलते हुए खुश जसवंत सिंह की फोटो इस बात का निराकरण करती है, जो जसवंत सिंह ने तालबोट से कहीः 'वो भाग्यशाली थे जो कंधार से जिंदा वापस आ सके।'

तथ्य बताते हैं कि जसवंत सिंह कंधार सब कुछ पहले से तय करके गये थे। 31 दिसम्बर 1999 की सुबह कैबिनेट कमिटी ऑफ सिक्योरिटी की मीटिंग में जसवंत सिंह ने ऐलान किया था कि वो तीन आतंकवादियों को साथ लेकर कंधार जा रहे हैं। आडवाणी ने इस कदम पर सवाल पूछा। हमेशा की तरह वाजपेयी की खामोशी ने सबको बता दिया कि जसवंत सिंह के आत्मसमर्पण को वाजपेयी का समर्थन और स्वीकृति थी। कुछ ही हफ़्तों बाद इसी वाजपेयी ने तालिबान को उनकी सेवाओं के लिये 1.12 लाख डॉलर चैक देने से विदेश मंत्री को मना किया।

अपने प्रशंसकों से घिरे और चापलूस मीडिया के होते हुए वाजपेयी ने सोचा कि ढुलमुल रहना, दोहरा बोलना, अपनी हर बात से मुकर जाना और आम आदमी की समझ से बाहर होना ही सबसे अच्छा विकल्प है। चापलूस और तारीफ से पागल वाजपेयी हर स्थिति में सिर्फ शब्दजाल ही बुनते रहे। आज जब वे सत्ता से बाहर हैं उन्हें इस सवाल का जवाब देना चाहिये : कंधार में भारत को क्यों घुटनों के बल चलना पड़ा ?

कस्तूरी कुण्डल बसे

सत्यनारायण

–खट्टर काका

खट्टर काका लस्सी का आनंद ले रहे थे।

मैंने कहा – खट्टर काका, आज मेरे यहाँ सत्यनारायण भगवान् की पूजा है।

खट्टर काका बोले – सचमुच ? लेकिन कहीं ऐसा न हो कि सत्य के नाम पर असत्य की...

मैंने कान पर हाथ रखते हुए कहा – खट्टर काका, भगवान् के साथ हँसी नहीं करनी चाहिए।

खट्टर काका मुस्कराते हुए बोले – भगवान् के साथ हँसी–खेल तो तुम लोग करते हो।

मैं – सो कैसे ?

खट्टर काका ने कहा – तब पूजा की 'पद्धति' देखो। भगवान् की षोडशोपचार पूजा कैसी होती है ?

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्
मधुपर्काचमनी स्नानं वसनं भरणानि च
गंधपुष्पधूपदीपनैवेद्यानि विसर्जनम्

पहले भगवान का आवाहन कर उन्हें आसन दिया जाता है। स्वागत किया जाता है। इहाऽगच्छ, इह तिष्ठ, इदमासनं गृहाण। (यहाँ आया जाय, बैठा जाय, आसन ग्रहण किया जाय।) तब पाद्यार्घ : (यानी पाँव धोने का जल)। मुख प्रक्षालन के निमित्त आचमनीयम्। मधुपर्क (यानी हलका जलपान)। स्नान के लिए स्नानीयं जलम्। नव वस्त्राच्छादन। फूल, माला, चंदन, धूप, कपूर आदि सुगंधित द्रव्यों का अर्पण। तदनंतर भाँति–भाँति के नैवेद्य।

घृतपक्वं हविष्यान्नं पायसं च सशर्करम्
पापाविधं च नैवेद्यं विष्णो मे प्रतिगृह्यताम्

भगवान् को निवेदन किया जाता है कि ''घी में बने हुए ये पकवान और पायस वगैरह मधुर पदार्थ आप भोग लगावें।''

सचमुच भोग लगानेवाले तो दूसरे ही भाग्यवान होते हैं। फिर भी मखौल की तरह भगवान् के सामने पान–सुपारी भी पेश कर दी जाती है!

लवंगकर्पूरयुतं तांबूलं सुरपूजितम्
प्रीत्या गृहाण देवेश मम सौख्यं विवर्धय

''लौंग कपूर से सुवासित खुशबूदार पान हाजिर है। शौक फरमाइए।''

और अंत में खड़े होकर आरती दिखाकर जाने की घंटी बजा देते हैं। पूजितोऽसि प्रसीद। सवस्थानं गच्छ। अपराधं क्षमस्व।

"आपकी पूजा हो चुकी। अब खुश होइए। अपने घर जाइए। जो कुछ भूल–चूक हो गई हो, उसे माफ कीजिए।''

अजी, यह सब दिल्लगी नहीं, तो और क्या है ? और इतनी सारी आवभगत किसकी होती है ? कुछ छोटे से चिकने पत्थरों की, जो घिस –पिटकर गुलाब–जामुन या काला जामुन के आकार के बन गये हैं!

मैंने कहा – खट्टर काका, नर्मदेश्वर और शालग्राम तो साक्षात शिव और विष्णु के प्रतीक हैं?

खट्टर काका हँसते हुए बोले – अजी, नर्मदेश्वर का अर्थ ही होता है नर्म परिहासं ददाति इति नर्मदः तत्प्रकारकः ईश्वरः! यानी हास–परिहासवाले भगवान्। शालग्राम की बदौलत इस विशाल ग्राम में इतने लोगों के मनोविनोद का प्रोग्राम बन जाता है और कई किलोग्राम लड्डू भी बँट जाते हैं! यह सिनेमा से सस्ता पड़ता है, क्योंकि इसमें टिकट नहीं लगता और अंत में प्रसाद भी मिल जाता है। इसमें बच्चों के खेल से अधिक गंभीरता रहती है। क्योंकि इसमें बड़े–बूढ़े भी शामिल रहते हैं और एहसास नहीं होता कि यह सब स्वाँग हो रहा है। लड़कियाँ गुड़िया को दुलहिन की तरह सजाकर खेलती हैं; तुम लोग भगवान् को मेहमान बनाकर खेलते हो। जैसे शालग्राम तुम्हारे समधी हों!

मैं – सो कैसे, खट्टर काका ?

खट्टर काका बोले – देखो, बारात में समधी के आने पर जो सब खातिरदारी की जाती है, वही सब तो भगवान् की पूजा में भी होती है। आसन, पानी, स्नान, जलपान, फूल–माला, खुशबू, मिष्टान्न–भोजन, पान–सुपारी, धोती और अंत में क्षमाप्रार्थना कि भूलचूक माफ करेंगे। तब फर्क यही है कि शालग्राम को चुल्लू भर पानी में स्नान–आचमन करा दिया जाता है और भोग जो लगाया जाता है सो सब ज्यों–का–त्यों रखा रह जाता है। वस्त्र के नाम पर सूत से भी काम चल जाता है। घंटे–भर में घंटी बजाकर विदा कर देते हैं–स्वस्थानं गच्छ। असली देवता को ऐसा कहा जाय तो अनर्थ ही हो जाय! परंतु भगवान् तो किसी के समधी हैं नहीं। समधी का अर्थ है ''समान बुद्धिवाला।'' यदि भगवान् में भी उतनी ही बुद्धि हो, जितनी यजमान में, तब तो ईश्वर ही बचायें!

मैं – लेकिन पूजा के साथ कथा भी तो होती है ?

खट्टर काका बोले – हाँ, पूजा है नाटक; कथा है उपन्यास। इस तरह दृश्य और श्राव्य, दोनों का मजा दर्शकों को मिल जाता है।

मैं – खट्टर काका, कथाओं में तो बहुत गूढ़ तत्त्व भरे होंगे ?

खट्टर काका ने आलमारी से सत्यानारायण–व्रत–कथा निकालते हुए कहा – तब वह भी सुन लो। पंडितजी रात में शंख बजा–बजाकर जो कथा बाँचेंगे, उसका निचोड़ मैं अभी बता देता हूँ। एक बार नैमिषारण्य में लोकहित की दृष्टि से एक विचार–गोष्ठी आयोजित की गयी। उद्देश्य यह था कि मानवों के दुःख दूर करने के लिए कोई ऐसा सुगम मार्ग ढूँढ़ा जाय कि कम समय में, कम खर्च में, कम परिश्रम में, अधिक–से–अधिक फल प्राप्त हो सके।

स्वल्पश्रमैः स्वल्पवित्तैः स्वल्पकालैश्च सत्तम
यथा भवेत् महापुण्यं तथा कथय सूत नः

'कनफरेंस' के अध्यक्ष सूतजी ने कहा – ''एक बार बैकुंठ लोक में नारदजी यही प्रश्न विष्णु भगवान् से पूछते भये थे –''

मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः
तत्कथं शमयेन्नाथ लघूपायेन तद्वद

(मर्त्यलोक में लोग नाना प्रकार के क्लेशों से पीड़ित हैं। कोई ऐसी आसान तरकीब बताइए कि उनका उद्धार हो जाय।)

''तब परम कृपालु भगवान् यह उपाय बतावयो भये थे''–

सत्यनारायणस्यैतद् व्रतं सम्यग् विधानतः
कृत्वा हि सर्वदुः खेभ्यो मुक्तो भवति मानवः

(सत्यनारायण की पूजा विधिपूर्वक करने से मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।)

इतना ही नहीं, भगवान् ने पूजा की विधि यानी प्रसाद का नुसखा भी बता दिया!

रंभाफलं घृतं क्षीरं गोधूमस्य च चूर्णकम्
अभावे शालिचूर्णं वा शर्करा च गुडं तथा

''पके हुए केले, दूध, घृत, गुड़–शक्कर और गेहूँ का आटा–सब एक साथ मिलाकर प्रसाद बना लो।'' भगवान् इतने दयालु हैं कि वे विकल्प बताना भी नहीं भूले! ''यदि गेहूँ का आटा नहीं मिले, तो चौरेठा लेकर भी काम चला सकते हो।''

बुद्धदेव ने दुःख की समस्या को हल करने में अपना पूरा जीवन लगा दिया और ऐसा अष्टांग मार्ग बताया, जिसे कष्टांग मार्ग ही समझना चाहिए। लेकिन भगवान् ने इस समस्या का चुटकियों में समाधान कर दिया और ऐसा मिष्टांग मार्ग बता दिया, जो सबके लिए सुलभ है।

प्रसादं भक्षयेद् भक्त्या नृत्यगीतादिकं चरेत्
ततश्च बंधुभिः सार्धं विप्रांश्च प्रतिभोजयेत्

''लोग प्रेमपूर्वक प्रसाद पावें, पवायें। कुछ नाच–गान का भी शगल रहे। भाई–बंधुओं के साथ–साथ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय।''

तत्कृत्वा सर्वदुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः

'ऐसा करने पर मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।''

अब इससे बढ़कर आसान तरीका और क्या हो सकता है ?

मैंने कहा – लेकिन...

खट्टर काका बोले – इसी 'लेकिन' का जवाब देने के लिए चार प्रमाण पेश किये गये हैं, जिनसे भक्तों के मन में आस्था जमे और पूजा करने की प्रेरणा मिले।

खट्टर काका ने सत्यनारायण कथा के पृष्ठ उलटते हुए कहा – देखो। पहली कथा काशी के एक दरिद्र ब्राह्मण की है। भगवान् तो दयार्द्रचित्त हैं। उन्होंने ब्राह्मण को भीख माँगते देखकर उपदेश दिया–

सत्यनारायणो विष्णुः वांछितार्थफलप्रदः
तस्य त्वं पूजनं विप्र कुरुष्व व्रतमुत्तमम्

''सत्यनारायण भगवान् की पूजा करो, जो सभी मनोरथों को पूरा करनेवाले हैं।''

उसी दिन ब्राह्मण को बहुत पैसे मिल गये। उसने पूजा की। नफा देखकर हर महीना पूजा करने लगा।

सर्वदुःखविनिर्मुक्तः सर्वसंपत् समन्वितः
सर्वपापविनिर्मुक्तः दुर्लभं मोक्षमाप्तवान्

वह सब दुःखों से, सब पापों से, मुक्त होकर, सभी सुख–साधनों में सम्पन्न हो गया और अंत में मोक्ष भी पा गया, जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है!

मुझे मुँह ताकते देखकर खट्टर काका बोले – काशी में रोज ढेर के ढेर भिक्षुक ब्राह्मण घूमते हैं। पता नहीं, भगवान् एक उसी पर क्यों ढुल पड़े! और, उसे सलाह भी दी तो उद्यम करने की नहीं, पूजा करने की! खैर, जब रास्ता मालूम हो ही गया है, तब अभी तक वहाँ रोज भिखमंगों का मेला क्यों लगा रहता है ? अभागों को इतनी अक्ल क्यों नहीं होती कि किसी से कर्ज लेकर एक बार घी–शक्कर वगैरह सामान जुटा लें। फिर तो उनके मुँह में हमेशा घी–शक्कर रहेगा।

मैंने कहा – खट्टर काका , क्या सभी कथाएँ ऐसी ही हैं ?

खट्टर काका बोले – हाँ जी। मैं इन्हें इतिहास नहीं, इतिहार समझता हूँ। एक लकड़हारे ने पूजा की। उसे लकड़ी का दूना दाम मिल गया।

तद्दिने काष्ठमूल्यं च द्विगुणं प्राप्तवानसौ

और, उसी पूजा की बदौलत उसे दौलत, बेटा, स्वर्ग, सबकुछ मिल गया। इसी तरह एक राजा (अंगध्वज) ने पूजा की और उसे भी सबकुछ मिल गया।

तदव्रतस्य प्रभावेण धनपुत्रान्वितोऽभवत्
इहलोके सुखं भुक्तवा चांते सतयपुरं ययौ

अजी, ये सब विज्ञापन नहीं, तो और क्या हैं ? लगता है, जैसे कोई दलाल बोल रहा हो! बीमा–एजेंट की तरह।

मैं – लेकिन ये सब तो बच्चों की कहानियाँ जैसी लगती हैं।

ख. – सो तो है ही। हाँ, एक कहानी अलबत्ता रसीली है। उसमें सत्यनारायण भगवान् के चरित्र की कुछ झाँकी भी मिल जाती है।

मैंने पूछा – क्या लीलावती–कलावती वाली कथा ?

खट्टर काका बोले – हाँ। वह तो जानते ही होंगे ?

मैंने कहा – नहीं, खट्टर काका। आपके मुँह से सुनने में मजा आयेगा।

खट्टर काका बोले – तब सुनो। एक महाजन ने पूजा की, और

एकस्मिन् दिवसे तस्य भार्या लीलावती सती
गर्भिणी साऽभवत् तस्य भार्या सत्यप्रसादतः

उसकी स्त्री लीलावती को गर्भ रह गया। सत्यनारायण के प्रसाद से। एक सुंदर कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम पड़ा 'कलावती'। महाजन ने संकल्प किया कि इसकी शादी के वक्त फिर पूजा करूँगा। लेकिन बदकिस्मती के मारे बेचारा भूल गया। नतीजा यह हुआ कि भगवान् नाराज हो गये और शाप दे बैठे।

विवाह समये तस्याः तेन रुष्टोऽभवत् प्रभुः
भ्रष्टप्रतिज्ञमालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान्
दारुणं कठिनं चास्य महद्दुःखं भविष्यति

(''अच्छा बच्चू! तुमने वादाखिलाफी की है! अब लो, मजा चखो।'')

अब आगे का हाल सुनो। महाजन अपने जमाता के साथ वाणिज्य के सिलसिले में बाहर गया। वहाँ राजा (चंद्रकेतु) के यहाँ चोरी हुई। भगवान् की प्रेरणा से चोर वहीं माल छोड़कर भागा, जहाँ ये दोनों (ससुर–दामाद) ठहरे हुए थे। राजा के सिपाहियों ने वहाँ से माल बरामद किया और दोनों को पकड़कर ले गये। उनकी सारी

संपत्ति जब्त कर ली गयी और वे कारागार में बंद कर दिये गये। वे बहुत रोये–कलपे, लेकिन

मायया सत्यदेवस्य न श्रुतं कैस्तयोर्वचः

सत्यनारायण की माया से किसी ने उनकी बातों की सुनवाई नहीं की।

मैंने कहा – खट्टर काका, इससे तो भगवान् के चरित्र पर बट्टा लगता है।

खट्टर काका बोले – भगवान् पर भले ही बट्टा लगे, भक्तों का अपना बट्टा तो प्रसाद से भर जाता है। अगर वे भगवान् को इस रूप में अंकित नहीं करेंगे, तो लोग डरेंगे कैसे ? और डरेंगे नहीं, तो पूजा कैसे चढ़ायँगे ? सत्यनारायण को मामूली देवता मत समझो। वह दारोगा से कम नहीं हैं। रोकर हो, गाकर हो, उन्हें दो। नहीं तो ऐसा फँसा देंगे, कि जेल में सड़ते रह जाओगे।

मैं – ऐसे भगवान् से किसी को प्रीति कैसे हो सकती है ?

ख. – अजी, 'बिनु भय होंहिं न प्रीति।' सामान्य जनता प्रीति से उतना नहीं करती, जितना भीति से। अगर लोगों को विश्वास हो जाय कि शालग्राम से कुछ बनने–बिगड़ने का नहीं, तो उन्हें सीधे शालग्रामी नदी से विसर्जन कर देंगे। दुनिया में शुद्धं–बुद्धं बनने से काम नहीं चलता। इसलिए नारायण को प्रतिशोध–परायण बना दिया गया है।

मैंने पूछा – तब ससुर–दामाद छूटे कैसे ?

खट्टर काका ने कहा – आगे का हाल और दिलचस्प है। माँ–बेटी घर पर थीं। उन्हें क्या पता कि दोनों के पति हवालात की हवा खा रहे हैं। एक रात कलावती देर से घर लौटी। माँ डाँटने लगी – ''तू इतनी रात तक कहाँ थी ?'' कलावती ने कहा कि सत्यनारायण की पूजा देख रही थी। यह सुनते ही लीलावती को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गयी। उसने भी लगे हाथ पूजा कर ली और भगवान् से प्रार्थना की –

अपराधं च मे भर्तुः जामातुः क्षन्तु महंसि

''मेरे पति और दामाद का अपराध क्षमा करें।''

व्रतेनानेन संतुष्टः सत्यनारायणः प्रभुः

भगवान् गद्‌गद हो गये और राजा (चंद्रकेतु) को स्वप्न दिया–

देयं धनं त तत्सर्वं गृहीतं यत् त्वयाऽधुना

नो चेत् नाशयिष्यामि सराज्यधनपुत्रकम्

''महाजनों का सारा धन लौटाकर उन्हें तुरंत छोड़ दो, नहीं तो राज–पाट समेत तुम्हारा नाश कर दूँगा।''

अजी, भगवान् क्या हुए ? शनैश्चर हुए! जिस पर लग जाएँगे, उसे समूल नष्ट कर देंगे। बेचारा चंद्रकेतु क्या करता ? महाजनों का जितना माल था, उसका दूना देकर उन्हें विदा कर दिया।

पुरानीतं तु यद् द्रव्यं द्विगुणीकृत्य दत्तवान्

प्रोवाच तौ ततो राजा गच्छ साधो निजाश्रमम्

कहा – ''महाराज! जाइए अपने घर, और मेरी जान बख्शिए।''

मैने पूछा – खट्टर काका, बेचारे चंद्रकेतु का क्या कसूर था, जो भगवान् उस पर बिगड़ गये ?

खट्टर काका बोले – भगवान् को एकाएक स्मरण हो आया होगा कि कलावती का यौवन विरह के ताप से कुम्हला रहा है और उसके पति को वह दुष्ट राजा बंद किये हुए है। वह भूल गये होंगे कि उन्हीं की माया से ऐसा हुआ। अजी, सामर्थ्यवान् और गिरगिट को रंग बदलते कितनी देर लगती है!

खट्टर काका को हँसी आ गयी। बोले – देखो, एक थे उग्रदेव शास्त्री। उन्हें एक बार भोजन में जरा देर हो गयी तो स्त्री का गला काटने दौड़े। और जब आगे में गरम–गरम कचौड़ियाँ परोसी गयीं, तो इतने खुश हुए कि स्त्री के गले में चंद्रहार लाकर डाल दिया। दूसरे दिन दाल में कुछ ज्यादा नमक पड़ गया; चंद्रहार छीनकर ले गये। मुझे तो सत्यदेव भी उग्रदेव ही जैसे लगते हैं। क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः। न खींझते देर,, न रीझते देर,! गुस्से में महाजन को बँधवा भी दिया और जब उसकी बेटी कलावती की कला पर मुग्ध हो गये, तो उसे छुड़वा भी दिया। भगवान् क्या हुए, रियासत के जमींदार हो गये।

खट्टर काका ने नस ली। फिर बोले – अभी किस्सा खतम नहीं हुआ है। जब महाजन नाव पर सामान लादकर चला, तो फिर नारायण एक साधु के वेश में आ पहुँचे और पूछा कि नाव में क्या है ? महाजन को शक हुआ कि एक अपरिचित क्यों ऐसा पूछ रहा है। उसने यह कहकर टाल दिया कि

लतापत्रादिकं चैव वर्त्तते तरणौ मम

''नाव में घास–फूस वगैरह है।'' भगवान् तो ऐसे ही मौके की ताक में थे। फिर एक चरण लगा दिया–सत्यं भवतु त्वद्वचः। बस, जितना माल–मता था, बस लत्ता–पत्ता बन गया। अब तो बेचारा बनियाँ लगा सिर पीटने। भगवान् खुश हो रहे थे – ''कैसा मजा चखाया ? चले थे बच्चू मुझसे चालबाजी करने! अब छल करने का दंड भोगो।''

अजी, भगवान् स्वयं अपना रूप छिपाकर छद्‌मवेष में वहाँ गये सो तो छल नहीं हुआ, और बेचारे बनियाँ ने आत्मरक्षा की दृष्टि से अजनबी को माल का हाल नहीं बताया, तो वह छल हो गया! यही भगवान् का इंसाफ है!

खैर, बेचारे महाजन ने वादा किया–

प्रसीद पूजयिष्यामि यथा विभवविस्तरैः

'जितना हो सकेगा सो लेकर जरूर आपकी पूजा करूँगा।'' तब जाकर भगवान् संतुष्ट हुए और उसका माल लौटा दिया। चुंगीवाले अफसर का भी कान भगवान् ने काट लिया!

मैं – खैर,, किसी तरह बेचारा सकुशल घर लौट आया।

ख. – अभी और है जी। उधर घर पर खबर पहुँची तो कलावती उतावली होकर पति को देखने के लिए नदी की ओर दौड़ी। हड़बड़ी में भगवान् का प्रसाद लेना भूल गयी।

प्रसादं च परित्यज्य गता सापि पतिं प्रति

बस, भगवान् ने फिर थानेदारवाला विकराल रूप धारण किया।

तेन रुष्टः सत्यदेवो भर्त्तरिं तरणिं तथा

संहृत्य च धनैः सार्धं जले तत्रावमज्जयत्

उनका क्रोध ऐसा भड़का कि पूरी नाव को ही उलट बैठे। यह देखते ही कलावती बेहोश होकर गिर पड़ी। उसके माँ–बाप रोने–पीटने लगे। तब भगवान् ने फिर फब्तियाँ कसीं – ''बड़ी चली थी पति से मिलने! मेरा प्रसाद छोड़कर, मेरा अपमान कर स्वामी के पास दौड़ गयी। अब कहो! जब तक घर जाकर मेरा प्रसाद नहीं खायेगी, तब तक पति देवता गोते लगाते रहेंगे।'' मरता क्या न करता! कलावती

दौड़ी घर गयी, प्रसाद खा आई। किसी तरह रूठे हुए भगवान् को मनाया!

खट्टर काका सुपारी का कतरा करते हुए कहने लगे – अजी, मैं पूछता हूँ, वह नवयुवती उमंग में अपने पति से मिलने को दौड़ी तो भगवान् के दिल में इतनी ईर्ष्या क्यों धधक उठी ? इस तरह की प्रतिस्पर्धा तो सिनेमा के खलनायक में होती है। भगवान् कहीं ऐसा करें ? इनको तो और खुश होना चाहिए था कि कलावती अपने पति–देवता को भगवान् से भी बढ़कर मानती है। लेकिन यह तो प्रतिद्वंद्विता पर उतर आये! अंत में तो कलावती इनके सत्यलोक में गयी ही। चांते सत्यपुरं ययौ। पता नहीं वहाँ इनके साथ उनकी कैसी निभी होगी ? मुझे तो सत्यनारायण के नाम से भी भय लगता है!

मैंने पूछा – खट्टर काका, सत्यनारायण–कथा में चार–चार कहानियाँ क्यों दी गयीं हैं ? क्या एक से काम नहीं चल सकता था ?

खट्टर काका बोले – देखो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चारों से एक–एक प्रतिनिधि लिये गये हैं, जिससे जनता का प्रत्येक वर्ग पूजा करने के लिए प्रोत्साहित हो।

''एक ब्राह्मण गरीब से धनी हो गया। एक राजा को बेटा हुआ। एक बनियाँ को बेटी हुई। एक लकड़हारे को ज्यादा नफा हुआ।'' यही न चारों कथाओं का सारांश है ? अजी, ये सब बातें तो रात–दिन होती ही रहती हैं। लोग पूजा करें या न करें। लीलावती गर्भवती हो गयी, तो कौन–सी अनोखी बात हो गयी ? यहीं अब्दुल्ला मियाँ ने कब पूजा की कि उसके दर्जन–भर बच्चे हैं ? और, चौधरानीजी हर महीना कथा बचवाने पर भी गर्भिणी नहीं हुईं। अजी, मासिक पूजा से कहीं मासिक धर्म बंद होता है ? बेचारे त्रिवेदी जी जीवन भर शंख फूँकते रह गये, कभी घर पर खपड़ा नहीं चढ़ा और, तिनकौड़ी लाल ने चोर बाजार की बदौलत तिमंजिला मकान उठा लिया। तुम्हारे सत्यनारायण ने उसको दंड देकर तीनकौड़ी का क्यों नहीं बना दिया ?

मैं – तो क्या सत्यनारायण की कथा असत्य है ?

ख. – तुम स्वयं सोचकर देख लो। आदि से अंत तक इस कथा को देखने से यही लगता है, जैसे नारायण हद दर्जे के लोभी, स्वार्थी, क्षुद्र और दुष्ट हों। नारायण को नर से भी नीचे गिरा दिया गया है। बल्कि एक वानर जैसा चित्रण किया गया है, जो बात–बात में बंदर–घुड़की दिखाकर, हाथ का फल छीनकर ले भागे और फिर खुश होकर दे दे! ऐसे चरित्र से मन में भक्ति क्या होगी, उलटे अभक्ति हो जाती है।

मैं – लेकिन पूजा का फल कितना बताया गया है ?

ख. – हाँ–

सौभाग्यसंततिकरं सर्वत्रा विजयप्रदम्

''जो पूजा करेगा, उसकी सर्वत्र जीत होगी।'' मैं पूछता हूँ, अगर मुद्दई–मुद्दालह, दोनों एक साथ पूजा करें, तो किसकी जीत होगी ?

कथाकार लिखते हैं–

एतत् कृते मनुष्याणां वांछासिद्धि र्भवेद् ध्रुवम्

यजमान की वांछा सिद्ध हो या नहीं, पर पुरोहित की वांछा तो तत्काल सिद्ध हो जाती है। क्योंकि कथाकार यह लिखना नहीं भूले हैं–

विप्राय दक्षिणां दद्यात् कथां श्रुत्वा जनैः सह

अगर दक्षिणा नहीं मिले तो विधाता भी वाम हो जायँ!

मैं – तो क्या यजमानों से प्रसाद और दक्षिणा ऐंठने के लिए ही यह कथा गढ़ी गयी है ?

ख. – और क्या! यजमानों को उसी तरह फुसलाया गया है, जैसे बच्चों को फुसलाया जाता है–''कान छेदवा लो, तो गुड़ मिलेगा।'' इसी तरह यजमानों को लालच दिया गया है–''गुड़–केला दूध में घोलकर बाँटो, तो बेटा मिलेगा।'' बस, भोले–भाले यजमान सस्ता सौदा खरीदने के लिए टूट पड़ते हैं। जैसे, बच्चे दस पैसे की नकली घड़ी के पीछे दौड़ते हैं! उन्हें कहाँ तक कोई समझाए कि नकली माल के फेर में मत पड़ो! क्या रोकने से भी वे मानेंगे ? इसी तरह एक हाँड़ी दूध, केला, गुड़ घोलकर जो उसके बदले में बेटा–बेटी या स्वर्ग पाना चाहते हैं, उन्हें क्या कहा जाय ? इस देश में तो भेड़ियाधसान है। तभी तो नकली माल के दलाल मालामाल हो जाते हैं, और सत्य की राह पर चलनेवाले पामाल होते रहते हैं।

मैं – खट्टर काका, तब क्या करना चाहिए ?

खट्टर काका बोले – अगर शक्ति है, तो असली सत्यदेव की पूजा करो। जहाँ–जहाँ असत्य हो, अन्याय हो, धोखाधड़ी हो, जुआ–जोरी हो, घूसखोरी हो, काला–बाजार हो, सत्य पर पर्दा डालने की साजिश हो, वहाँ जाकर शंख फूँको, जनता में जागृति करो, समाज को सत्य के पथ पर लाओ। वही असली सत्यनारायण की पूजा होगी। और जब वैसी पूजा होने लगेगी, तो सचमुच पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा। कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा।

न किंचित् विद्यते लोके यन्न स्यात् सत्यपूजनात्!

पृष्ठ 13 को शेष.....

बेकद्री, तौहीन और न जाने क्या–क्या शब्दों की लहरें दिल पर चोट कर रही थीं। सब्र का बांध टूट रहा था और सहन शक्ति की सीमा रेखा न जाने कब खो गई थी।

मैं बहुत अच्छी तरह जान चुकी थी कि किसी भी औरत के लिए उसके सुख–दुख का माप उसके अपने साधन ही हैं। उसी मापदण्ड के अनुपात में वह सबकी तुलना करती है।

जब सबसे ज़्यादा अहम सवाल हो पेट की भूख, तन ढकने को कपड़ा और सिर छिपाने के लिए बसेरा, तब गुस्सा, रोष, अपमान, दर्द, नैतिक, अनैतिक, सही–गलत के भेद बेमानी हो जाते हैं। ज़िंदगी की मूल जरूरतें हक़ीक़त बन जाती हैं और औरतों को न जाने कितने और किस कदर के समझौते करने के लिए तैयार कर लेती हैं।

जिन इलाकों में तेईस प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं, जहां पैसा कमाने के कोई दूसरे साधन मुहैया न हों, जहां स्त्री–पुरुष अनुपात तेजी से गिरता जा रहा हो, जहां पितृसत्ता के ढांचे में औरत दबी हो, वहां सामाजिक जागरूकता लाने के लिए आर्थिक सशक्तता लाज़िमी हो जाती है। यहां सामाजिक कारणों को दोषी करार देकर उन्हें कगार पर खड़ा करने के साथ–साथ आर्थिक वजहों को भी रेखांकित करना बहुत ज़रूरी हो जाता है। वास्ताविकताओं को मानकर उन्हें समय रहते संबोधन करना हमारा फ़र्ज़ बन जाता है।

बुर्जे ख़ामोशां

–योगेश भटनागर

शहर तंग और बेचैन था। शहर का दम घुट रहा था। छटपटा रहा था। साँस थी कि न आते बनती थी न जाते बनती थी। उसकी पेशानी पसीने से तरबतर थी। सर्द हवाएँ तक पसीना सुखा नहीं पा रही थीं। दिसम्बर की सर्द रातें वैसे भी ज़रा लम्बी होती हैं। शाम से ही दायें हाथ से घंटियों की आवाज़ें बायें हाथ से अज़ान। शहर को लग रहा था कि ये आवाज़ें उसकी जान ही ले लेंगी। कम क्यों नहीं होती ये। शहर का कोतवाल और कमिश्नर सभी दायें और बायें ऐसे देख रहे थे मानो कह रहे थे कल आने वाले जूलूस को रोकने के लिए हफ्ता कम मिला है। दोनों ही असन्तुष्ट और गुस्से में थे। समझते क्या हैं अपने आपको ? जब जी चाहे जुलूस निकालते हैं और हर बार नज़राने और हफ्ते कम होते जा रहें हैं। हुकुमरान कहते हैं तुम ऐसा–वैसा मत होने दो। आँखें फिरा लो और आँखें फिरीं नहीं कि हफ्ता मार खाता है। कोतवाल कमिश्नर को सफाई दे रहा था, ''सबके हिस्सों पर असर पड़ता है सबको कम मिलता है और महँगाई है कि बढ़ती ही जा रही है।'' कमिश्नर भी बीच–बीच में मुस्कराता और सिर हिलाता। वह अभी भी अपने आपको गोरों का खालिस वारिस मानता था इसीलिए बीच–बीच में अंग्रेजी में मिनिस्टरों और दिल्ली के साहेबों की तरफ से कुछ तो कह रहा था। शहर सबको जानता था नाम से और काम से पर आज वह यह नहीं जान पाया कि कल आने वाले को शहर में न घुसने की मुनादी कर दी गयी है या इजाज़त दे दी गयी है। सारे छोटे–बड़े दुकानदार यही बात कर रहे थे। बड़ों ने फोन करके पूछताछ करनी चाही तो एक ही जवाब 'हुकुम का इन्तज़ार है।' इस परेशानी में वह अपने रोज़मर्रा के ग्राहकों को भूल गये थे और दुकानों को राम भरोसे छोड़ चौक में कोतवाल और कमिश्नर के इर्द–गिर्द खड़े उनकी बातें सुनने की कोशिश कर रहे थे साथ–साथ शकभरी निगाहों से उन्हें देख रहे थे, कहीं बड़े साहेब कुछ और हफ्ता तो नहीं माँग रहे थे। वह जानते थे कि उनकी दुकानें और जानें जभी तक महफूज़ रह पायेंगी जब तक नीचे से ऊपर तक हफ्ता मन–मुताबिक मिलता रहेगा। जब भी हफ्ता कम हुआ था नतीजा भुगतना पड़ा था–दुकानों में आग और बेकसूर की लाशों से शहर पाट दिया गया था। ''आखिर महँगाई भी बढ़ रही है और इसके साथ–साथ तुम सबका नफा भी'', कोतवाल हर 2 महीने बाद कहा करता। ''पर कल का जुलूस तो हमारे शहर का नहीं है। अपने गुण्डों, मवालियों, भगतों और काज़ियों को हम जानते हैं कल आने वालों का तो कोई अता–पता नहीं है। फिर हमारे साथ बाहर के कोतवाल और साहेब भी हैं। सीआरपी रेलवे पुलिस और जाने कौन–कौन–सी अर्द्धसैनिक पुलिस। सबकी आव–भगत, देखभाल हमें ही तो करनी है। समझदार को इशारा ही काफी है।'' कमिश्नर साहेब ने फिर गोरे अंग्रेज की तरह हाँ में गर्दन हिलाते हुए कुछ कहा।

सारा शहर कई दिनों से नये–नये चेहरों से भर गया था। सबके सिरों पर भगवा पट्टी, टोपी, मफलर या अंगौछा था और–तो–और कुछ के तो धोती–कुर्ते और कमीजें तक उसी भगवा रंग की थीं। हाल यह था कि शहर की ज़मीन भगवा रंग से रंग गयी थी और आसमान में कहीं–कहीं नज़र आने वाला हरा रंग अपने को बहुत ही एकाकी और अकेला पा रहा था। उसे आज अपनी तादाद कम होने का अहसास बड़ी शिद्दत से हो रहा था और महसूस हो रही थी इससे जुड़ी लाचारी, मजबूरी और घुटन। वह आज समझ गया था खुद अपनी जायज़ आवाज़ को दबा देने का मतलब खुदकशी से कम नहीं होता। भगवा और हरा रंग अपने–अपने खेमों में अपने–अपने हिसाब से बहस कर रहे थे। कुछ अपनी मेहँदी दाढ़ी में हाथ फिरा–फिरा कह रहे थे 'ये' कैसे और कब से हमारी है, उधर कुछ मूँछों पर ताव देकर बता रहे थे 'वह' कैसे और कब से हमारा है। कभी–कभी तो ये बहसें इतनी तेज़ हो जाया करती थीं कि शहर को लगता कि अभी गोलीबारी हो जायेगी, कर्फ्यू लग जायेगा, भगदड़ मचेगी, औरतें और बच्चे अपने आपको अपने–अपने घरों में बन्द करके रोटी–पानी के लिए रोयेंगे, बिलखेंगे और कुछ अपने राम को प्यारे हो जायंगें यही सब तो हुआ था अभी 2 महीने पहले। शहर का सीना चप्पलों, दुपट्टों, पत्थरों, सलाखों और काले खून से अट गया था। इस बार भी शहर के रईस अपने परिवारों और सामान को मोटरगाड़ियों में डालकर कहीं दूसरे शहर चले गये थे और जब भी कोई मोटर धूल उड़ाती शहर के बाहर भागती तो दोनों रंग मन में कहते, ''छोड़ गये हमें मरने को।'' कुछ तो यही सब कहते पर वज़नदार गालियों के साथ जिनमें अपने–अपने रंग का असर होता। शहर इन सबको समझता था। वह जानता था कि ये सब शहर से नफा कमाने के अलावा किसी किस्म का सरोकार नहीं रखते। शहर का आखिरी रईसे–आज़म भी आज दोपहर को अपनी दुकान में भारी–भरकम ताला लगाकर चला गया था। जाते–जाते उसने भी औरों की तरह एक नज़र कोतवाल को देखा और दूसरी नज़र से दुकान को। और फिर अपनी जेब पर हाथ फिराते हुए एक नज़र और कोतवाल को देखा। कोतवाल की नज़र साफ कह रही थी, ''हुजूर, हम तो आपके गुलाम हैं हमारी मज़बूरी समझिए जो आ गये हैं और जो आ रहे हैं उनमें से हम किसी को नहीं जानते। आज तक कभी नमकहरामी की है ?'' कमिश्नर की आँखें मुस्कराते हुए कह रही थीं, ''हुजूर, इत्मीनान रखें आपकी दुकानों को न तो आग लगने दी जायेगी ना ही उनका ताला तोड़ने दिया जायेगा। आखिर आपने तो हमें सूद तक दिया है हमारे हफ्ते पर।'' शहर के रईस ने फिर कोतवाल को देखा। उसकी आँखें जवाब में बड़ी अदब से झुक गयीं।

कमाल है ? शहर के सारे रईस शहर छोड़ गये हैं और हमने इनके माल–असबाब की हिफाज़त का वादा किया है। हफ्ता भी क्या चीज़ है और वह भी अगर सूद समेत मिले ? कोतवाल सोचते–सोचते कमिश्नर साहेब को देख रहा था और कमिश्नर साहेब वैसे ही

मुस्करा रहे थे और वही सब खामोशी से कह रहे थे जो कोतवाल सोच रहा था।

हालाँकि शाम ढलनी ही शुरू हुई थी पर दुकानें बन्द होने लगी थीं। शर्टस् को खींचने की आवाजें उनके बड़े–बड़े काले मुँह में ताले ठूँसने का शोर और चाबियों को घुमाने–निकालने की आवाज़ें। कुछ ही मिनटों में शहर की सड़कों की रंग–बिरंगी दीवारें एक काले रंग की लम्बी ऊँची–नीची, टेड़ी–मेढ़ी दीवारों में तबदील हो गयीं। कुछ दीवारों के साथ रंग–बिरंगे चबूतरे भी निकल आये। शहर ने एक साथ कई साँसों को महसूस किया और डरे–सहमें घरों को जाते हुए कदमों की आवाज़ों को सुना। और फिर उसी तंग, बेचैनी–घुटन और हाँफ की गिरफ्त में आ गया जो एक पल पहले पुरज़ोर बहसों, घंटियों, और अज़ान की आवाज़ों से हो रही थी। मछली और तरकारी बेचने वाली बूढ़ी औरतें भी आहें भरतीं, कोसती हुई अपनी–अपनी टोकरियाँ उठाये अपने को घसीटती हुई अपने–अपने ठिकानों की तरफ रेंग रही थीं। घबराये और सहमे लोग आज मण्डी के चौड़े रास्ते की बजाय तंग गलियों के रास्ते अपने घर जा रहे थे। जाने क्या होगा ? वह कल आ रहा है। यही सोच थी शहर के दिमाग में। देखते–देखते शहर की सड़कों पर कब्रिस्तान–सी सपाट खामोशी और मरघट–सी एकाकी नीरवता पसर गयी। किसी अर्थी या ज़नाज़े को उठाते ही औरतों और बच्चों के रोने और सिसकने की जैसी आवाज़ें आती हैं वैसी ही आवाज़ें बीच–बीच में भारी और दहशतभरी खामोशी को तोड़ रही थीं।

शाम के घने लम्बे साये शहर के ऊपर पसरने लगे थे। पश्चिमी छोर पर ढलता सूरज सुर्ख और बड़ा होता जा रहा था। पता नहीं गुस्से से या रोने से सुर्ख था बहरहाल खौफज़दा सूरज भी अपनी पीली कमज़ोर उदास किरणों से शहर की काली दीवारों, सफेद चबूतरों, घरों की छोटी–बड़ी बन्द–खुली, ढली खिड़कियों को सहलाते हुए दिलासा देते हुए पल भर में एकाएक गायब हो गया। शहर काँप उठा। क्या सच में कल वह आ रहा है ? सूरज के गायब होते ही रात की स्याही ने शहर पर कालिख पोत दी। कहीं–कहीं बन्द खिड़कियों, झिर्रियों में से रोशनी की मद्धिम किरण बाहर काँपती दिखाई पड़ती थी वरना शहर स्याह काला स्याह हो गया था।

शहर के दायें छोर पर पीली–सफेद रोशनी के नीचे सड़क पर एक सभा चल रही थी। महामहिम आचार्य, पुजारी और शहर के ठेकेदार ज़ोर–जोर से बता रहे थे, ''यह हमारा है। कई सालों पहले जबर्दस्ती उन्होंने यहाँ पर अपनी बनायी। हमें हमारा वापस लेना है। आखिर यह देश हमारा है। यह हमारे आराध्य का जन्मस्थल है। हम यहाँ बनाकर ही दम लेंगे। आ जाने दो कल और हाथों को। देख लेंगे...'' और इसके बाद वही भगवा नारों का पुरज़ोर उद्घोष।

शहर के बायें छोर पर जमात इकट्ठी थी। शहर की सफेद, मेहँदी और काली दाढ़ियाँ बैठी थीं। ज़र्द और खौफज़दा चेहरे, दाढ़ियों में हाथ फिराते हुए एक–साथ बोल रहे थे। कुछ कह रहे थे कोतवाल को कुछ और हफ्ता जमा करके दे दो, कुछ इमाम से फतवे की गुज़ारिश कर रहे थे, कुछ जिहाद ऐलान करने को कह रहे थे, कुछ चुपचाप शहर छोड़ने की सलाह दे रहे थे और कुछ के मुताबिक सभी को आज रात में ही उसके अन्दर चले जाना चाहिए और रात भर नमाज़े–खैरियत अदा करनी चाहिए। अल्ला ही रकीब से निजात दिलायेगा। सभी अपनी–अपनी जगह ठीक थे। किसी भी तरह एक राय नहीं बन पा रही थी और बनती भी कैसे बात आकर रुकती तो सिर्फ एक मुद्दे पर ''हम उनसे तादाद में शहर में ही नहीं मुल्क में भी कहीं ज़्यादा कम हैं। हमारा एक कदम हमारे अज़ीजों के लिए आज़ाब हो जायेगा। निहायत ही संगीन असरात होंगे। बेकसूर, निहत्थे, लाचार और मजबूर मारे जायेंगे। औरतों, जवान लड़कियों पर जबर्दस्ती होगी, बच्चे बख्शे नहीं जायेंगे।'' तभी एक जवान आवाज़ गरजी, ''ये बुज़दिली है। बेबुनियाद लाचारगी है। तादाद कम है तो क्या सिर्फ रूँदने को तैयार रहें। नहीं बर्दाश्त करेंगे। ताकत का इस्तेमाल करेंगे हम भी। ईंट का जवाब पत्थर से देंगे–उल्फा नक्सलों और पी.डब्ल्यू.जी. की तरह। दिखा देंगे। हमें कमतर न समझें।'' इतना सुनते ही सफेद और मेहँदी दाढ़ियाँ सूखी, पतली छातियों से जा सटीं। तजुरबा कुछ कहने से डरता था हालाँकि जानता था हश्र वही होगा जो अब तक हुआ है पर इस बार बड़ा ही बेदर्द, बेरहम और कहरिया होगा। तभी इमाम शौकत चिल्लाया, ''क्या बकवास कर रहे हो ? हुकुमरान, कोतवाल और कमिश्नर यही तो चाहते हैं! खून–खराबा हो और ज़्यादा खून–खराबा हो, नसीम, उल्फत, मुमताज़, खुरशीद, इन्तजार और नसीबन के दुपट्टे फिर चिर जायें। पागल हो गये हो। अपने माज़ी से सबक लो, बेवकूफो।''

शौकत के साथ कई और पोपले मुँह, तजुरबे की झुरियाँ, सफेद मेहँदी दाढ़ियाँ यही दोहरा रहे थे। उनकी साँसें फूल गयी थीं। वे गुस्से और डर से काँप रहे थे। सभी आवाज़ें एक साथ अपनी–अपनी बातें कह रही थीं। ऐसा लग रहा था मानो चिल्लाने से उन्हें राहत मिल रही थी।

''चिल्लाना–चीखना बन्द हो गया था। गुस्सा भी कम हो गया था। फिर एक बार वही सवाल, ''क्या करना चाहिए वह कल आ रहा है'', सामने मुँह बाये खड़ा था। हर गुज़रता पल सवाल को भारी बनाये जा रहा था। अब कोई भी कोई राय नहीं दे रहा था। वे सब थक गये थे और धीरे–धीरे खामोशी यह साफ बता रही थी कि इसका कोई हल नहीं है। कल से अगर कोई बचा सकता है तो सिर्फ करिश्माए–अल्लाह या कोई चमत्कार। शहर के सारे रईस जा चुके थे और वे सब भी जिनको पास के शहर में कोई ठौर था।

हो सकता है कोतवाल ही कुछ करे,। हुकुमरानों से रहम की भीख भी कई–कई बार माँगी जा चुकी है। हो सकता है कुछ भी न हो कल ? सब यही सोच रहे थे।

घंटियों और अज़ानों की आवाज़ें अभी तक आ रहीं थीं। शहर जाग रहा था। शहर चाहता था कि उसकी सरहद की सड़क फट जाये, भूचाल आ जाये और उसके चारों तरफ एक गहरी खाई हो जाये जिससे कल आने वाले अन्दर न आ पायें। शहर हुकुमरानों और कोतवाल से नाउम्मीद था। अच्छी तरह वाकिफ था उनकी फितरत से। कुएँ जैसा पेट था उनका। अहसान फरामोश और बेहया होने के साथ–साथ बेखौफ भी थे। क्या हुआ अगर इन्तज़ार मारा गया था या खुरशीद का दुपट्टा फाड़ दिया गया। शहर सोच कर डर रहा था जाने कितने इन्सानी पैर कल उसकी छाती रौंदेंगे और कितनी बेकसूर लाशें उसकी छाती से लिपट जायेंगी। वह खुद भी करिश्मे की दुआ कर रहा था।

तभी कहीं से एक आवाज़ आयी, ''क्यों न उस पगली नजूमी शान्ति को बुलायें और उससे पूछें कल क्या होने वाला है ? किसी को वह मटका जिताती है, किसी को औलाद से नवाजती है, किसी की शादी करवाती है, किसी को रोज़गार दिलाती है। वह ज़रूर बता देगी कल क्या होने वाला है।'' सारे पोपले मुँह, झुर्रियों और सफेद और मेहँदी दाढ़ियों ने राहत की साँस ली। सच है कोई नहीं जानता उसका असली नाम क्या है या यह नाम किसने दिया। पागलपन के दौरे के बाद जब वह शांत बैठी होती तो शहर के लोग कहते, ''आज तो शान्ति है चौराहे पर'' शायद तभी से उसका नाम शान्ति पड़ गया था। बरसों से शहर के चौक पर बैठी है। रात–दिन सर्दी–गर्मी, बरसात बारह महीने वही चौक उसका घर–ठिकाना था कभी पटरी पर आ बैठती तो कभी चौक के बीचोंबीच लेटती। हो सकता है शान्ति ही कुछ अक्ल की बात सुझाये।

दो जवान शान्ति को लाने के लिए भेज दिये गये। दोनों जब चौक के बीचोंबीच खुले बाल, अधनंगी उकडूँ लेटी शान्ति के पास पहुँचे तो वह एक बच्चे की रोती आवाज़ में कुछ अपने आपसे बड़बड़ा रही थी। उसकी रोती आवाज़ और आसुँओं ने उन्हें पस्त कर दिया। कुछ कहने या पूछने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहे थे। फिर भी एक ने कहा, ''दादी अम्मा,, चलो, शौकत भाई ने बुलाया है।''

शान्ति अपने आपसे बड़बड़ाती रही, रोती रही और अधनंगे शरीर को फटे कपड़े से ढँकने की कोशिश करती रही। जब उसकी समझ में आया तो उसने हाथ उठाकर उसको सहारा देकर उठाने का इशारा किया। दोनों ने उसे दोनों तरफ से पकड़ कर उठाया। उसके कपड़े ठीक किये और चलाना शुरू किया। जब भी वह घरों के पास गुज़रते तो सभी कहते इस पगली ने जिसने अपने दोनों बेटों की आने वाली मौत को कई दिन पहले देखा था ये बतायेगी कल क्या होगा ? शौकत को क्या हो गया है ? कहीं वह भी तो 'शान्ति' नहीं हो गया ?

शान्ति के पीछे–पीछे एक बड़ा हुजूम चला जा रहा था। शान्ति का बड़बड़ाना जारी था और आँसुओं का बहना भी। शान्ति अन्दर चली गयी। हुजूम बाहर बड़ी बेचैनी से खड़ा इन्तज़ार कर रहा था। रात और स्याह होती जा रही थी। शान्ति क्या कहेगी ?

''शान्ति, वह कल आ रहा है।'' शौकत ने चिल्ला कर कहा। बेखबर शान्ति वहीं बैठी कुछ बड़बड़ाती रही। बार–बार अधनंगे शरीर को कभी एक तरफ से ढँकती रही तो कभी दूसरी तरफ से। फिर उसने कहना शुरू किया कैसे उसके जवान बेटे लड़ाई में मारे गये कितना मना किया था फौज में मत जाओ एक न सुनी। उसने बड़ी तफसील से बताया कैसे उसके बेटों को राइफल के हत्थों से मारा गया और कैसे उनकी लाशों को सरहद के इस पार फेंक दिया गया था। उनके मरने के कई दिन पहले उसने ये सब अपनी आँखों से देखा था। ये सब बताते हुए उसकी आँखें लाल हो गयीं, उसकी आवाज़ ऊँची होती गयी। मुँह से झाग आने लगे, नथुने फूल गये और हिचकियाँ बँध गयीं। उसके हाथ–पैर काँप रहे थे। तभी उसने दहाड़ कर कहा – ''मुझे सब तरफ भूखे भेड़िये और इन्सान का खून लगे शेरों के मुँह दिख रहे हैं...सबकी आँखों में आग है। हाथों में हथियार हैं, आवाज़े बुलन्द हैं और इरादे पुख्ता। दूर–दूर तक कोतवाल नहीं दिख रहा है।''

इतना सुनते ही आसपास खड़ी छातियों में से सर्द आह और लाचारीभरी आवाज़ें निकलीं।

''मुझे अपने पैरों के तले स्याह हुआ इन्सानी खून–ही–खून नज़र आ रहा है, मर्दानी, जनानी लाशें नज़र आ रही हैं, और नज़र आ रही हैं पथरायी आँखें जो अपने अज़ीजों, औलादों, शौहरों, माँ–बहनों और बेटियों को ढूँढ़ रही हैं। मुझे नज़र आ रही हैं बेकसूर, बेसहारा बच्चे–बच्चियों की लाशें जिनको हुकुमरान और कोतवाल बड़ी बेदर्दी से कुचलते हुए आगे बढ़ रहे हैं। ''मारो, मारो कोई बचने न पाये। तोड़ो–तोड़ो, पुण्य का काम है – यही सब सुनाई पड़ रहा है।''

सिसकियों की आवाज़ें। आसपास के घरों की खिड़कियाँ खुल गयी थीं। सभी आँखें बुजुर्गों और तजुरबों की तरफ मुखातिब थीं और कह रही थीं, ''कुछ तो करो।'' पोपले मुँह, झुर्रियाँ, काली, सफेद और मेहँदी दाढ़ियाँ सदके में आ गयी थीं। न कुछ सोच पा रही थीं और ना ही कुछ कर पा रही थीं।

''चारों तरफ शोले और मौत देख रही हूँ मैं। रहम के लिए उठते हाथ, जान की दुहाई माँगतीं आवाजें, घरों का गिराना, दरवाज़ों को तोड़ना यही सब दिखाई पड़ रहा है। ''कोई बचने न पाये, पुण्य का काम है'' –यही सुन रही हूँ मैं।

सिसकियों की आवाज़ें घंटियों और अज़ानों की आवाज़ों में डूबी जा रही थीं।

''या खुदा खैर कर ! इन बन्दों को अक्ल बख्श'', पोपले मुँह बुदबुदा रहे थे।

''कयामत खड़ी है सामने। कहर टूट रहा है। नरक के खौलते हुए कड़ाहे और जोर से खदक रहे हैं। हैवानियत से वास्ता है कल इन्सान का'', पगली नजूमी शान्ति कहे जा रही थी। लगता था वह अब बिल्कुल ठीक हो गयी थी। उसकी आँखों से आँसू बहे जा रहे थे पर आवाज़ में यकीन था। सबने उसकी सारी बातें सुनीं और दुखी हो गये, यह एक पागल की आवाज़ नहीं थी यह आवाज़ उस आसमान की थी जो पूरब में सुर्ख हो रहा था। सबको यकीन हो गया था कि जो नन्हें–नन्हें बच्चे इस वक़्त अपनी माँओं की छातियों से लिपट कर चैन से सो रहे हैं उनमें से बहुत–से अनाथ हो जोयेंगे, जो नयी–नवेली दुल्हनें अपने प्यार की आगोश में अठखेलियाँ कर रही हैं बहुत–सी बेवा हो जायेंगी, अनगिनत लड़कियाँ गर्क में धकेल दी जायेंगी, जवान लड़कों को ढूँढ़–ढूँढ़ कर मारा जायेगा। ये सोच कर शहर काँप उठा।

पगली नजूमी जब सब कह चुकी तो उन्हीं दो जवानों ने उसे सहारा देकर उठाया, दोनों उसके दोनों तरफ होकर उसे चलाने लगे। चलते–चलते वह अपना अधनंगा शरीर कभी एक तरफ से तो कभी दूसरी तरफ से ढँकती रही, दहाड़ मार–मार कर रोती रही और बार–बार अपने बेटों का नाम दोहराती रही। जवान उसे वहीं उसके चौराहे पर बैठा आये। बैठते ही शान्ति की आँखें सूख गयीं। 'नरक, हैवानियत, बच्चे, औरतें, लड़कियाँ जवान' यही सब उसके होंठ दोहरा रहे थे।

शौकत और सभी लाचार, मजबूर, उदास, बेचैन और खौफज़दा चेहरे अपने–अपने घर चले गये। शहर रात भर बेचैनी में करवटें बदलता रहा। कभी सर्द आहें भरता तो कभी दुआ करता। उसे आने

वालों के पैरों की आवाज़ें साफ–साफ सुनाई पड़ रही थीं और सुनाई पड़ रही थीं वे। आवाज़ें जो अब तक नारों में तबदील हो चुकी थीं। वहशीपन और पागलपन था पर इसमें भी वे सब गर्व कर रहे थे। उन्हें यकीन था कि वे एक पुण्य का काम करने आये थे और जो जितना ज़्यादा करेगा उतना ही ज़्यादा पुण्य का भागीदार होगा। परलोक सुधारने का इससे अच्छा अवसर कभी नहीं आयेगा–आखिर अपने 'स्थान' की रक्षा करने से अच्छा भी कोई काम हो सकता है ? सुबह होने तक शहर के हर घर में बत्ती जलती रही। हर तरफ सर्द आहें और डर से भरी सिसकियाँ सुनाई पड़ रही थीं।

आज जब सुबह सूरज उगा तो कोई अँगड़ाई लेकर, उबासी भरते हुए या किलकारी मारते हुए नहीं उठा। डर और खौफ से सबके पैर सहम गये थे। सब अपने ही घरों में चोरों की तरह चल रहे थे। बच्चों को खामोश रहने के इशारे किये जा रहे थे, लड़कियों को अन्दर के कमरों में बन्द किया जा रहा था और घर के मर्द खिड़कियों से पर्दों की ओट से झाँक रहे थे। धड़कते दिलों की आवाज़ें घंटियों की आवाज़ों में गुम हो गयी थीं। अज़ान की आवाज़ आज एक बार ही आयी थी। आज भी 'वह' हमेशा की तरह खाली थी। कोतवाल, कमिश्नर और फौज एक तरफ खड़े थे। उनका रेला चला आ रहा था। इतना बड़ा हुजूम शहर ने कभी नहीं देखा था। चारों तरफ भगवा रंग से ढँके सिर, नाम से पुते भगवा कुर्ते, अंगोछे, कमीजें और हाथों में हथौड़े, छैनी, बल्लम और लाठियाँ और मुँह में जयकारा।

कहीं दूर से एक घंटी की आवाज़ आयी, उस घंटी के बाद शहर की सब घंटियाँ बजने लगीं। ''वह आ गया, वह आ गया, शहर में पहुँच चुका है'' – यही सब सुनाई पड़ रहा था। वह धीरे–धीरे शान से आगे बढ़ रहा था उसमें खड़े भगवे–कुर्तों के हाथ हिल रहे थे, होठ जयकारा कर रहे थे जो लोग अभी उसके दोनों तरफ थे वे पीछे हो गये और इस तरह वह सबसे आगे और उसके पीछे पुण्य कमाने वालों का हुजूम, बड़ा जयकारा और जोश में उठते हुए हाथ–यही सब नज़र आ रहा था।

इमाम शौकत काँप रहा था, उसके जबड़े बज रहे थे। पैरों में जान नहीं थी। वह भी सबकी तरह सोच रहा था, '' 'उसे कैसे महफूज़ रखा जाये ? बरसों पुरानी है। शहंशाह का नाम जुड़ा है उससे।'' असने अपने चारों तरफ देखा, हर खिड़की में से सहमी–सहमी दो–चार आँखें। आवाज़ें बढ़ती जा रही थीं, 'वह' और हुजूम करीब आ रहा था। अब तक किसी को पता नहीं था कि उसे कहाँ रोकना है, रोकना है भी या नहीं, कोतवाल और कमिश्नर, हुकुमरानों के हुकुम का इंतज़ार कर रहे थे। उनके चेहरे जयकारे के साथ–साथ हथौड़े, छैने, बल्लम और लाठियाँ भी हवा में उठ रही थीं। हुजूम 'उसकी' तरफ बढ़ा चला आ रहा था। शौकत ने सोचा वह इमाम है उसे ही कुछ करना चाहिए। पहले वह अन्दर गया लाऊडस्पीकर पर सबको शान्त रहने की अपील की, 'उसका' इतिहास बताया, 'उसके' नाम की अहमियत बतायी और उसे महफूज़ रखने की दुहाई माँगी। हुजूम था कि जयकारों के साथ आगे बढ़ा चला आ रहा था। हवा में हथौड़े, बल्लम, छैनी और लाठियाँ नज़र आ रहे थे। शौकत ने फिर वही एक बार और दोहराया, पर हुजूम जयकारों को और ज़ोर से करता हुआ बढ़ता ही रहा। फिर उसने हिम्मत जुटाई और पीछे की गली से भागता–भागता सड़क पर आ गया। उसने एक बार चारों तरफ देखा पर्दों के पीछे वही सहमी–डरी आँखें। कुछ ने खिड़कियाँ बन्द कर लीं। वह अब हुजूम के सामने खड़ा था। एक बार फिर उसने घरों की तरफ देखा वह हममज़हबियों को बुला रहा और साथ–साथ खड़ा होने को कह रहा था। उसने कई बार अपनी भर्रायी आवाज़ में उन्हें पुकारा पर सब आँखें खिड़कियों के पीछे छुप गयीं और कानों ने कुछ नहीं सुना। उसे लगाा उसकी आवाज़ खो गयी है। वह गूँगा हो गया है। शौकत भाग कर कोतवाल और कमिश्नर के पास गया और हुजूम को रोकने की गुज़ारिश करने लगा। उन्होंने ऐसे देखा मानो बहरे हों और कई बार 'क्या ?' दोहराया। कोतवाल की सफेद वर्दी चकाचक चमक रही थी और कमिश्नर की लाल–नीली सिल्क की टाई उसके नीले कोट के नीचे उसकी सेब जैसी तोंद पर हिल रही थीं साफ दिख रहा था वह अन्दर–ही–अन्दर खिलखिलाकर हँस रहा था। उसने एक बार फिर अपने हममज़हबियों को पुकारा। कुछ डरे–सहमे लोग बाहर आ गये और सबने एक आवाज़ में कहा–

''खामोश हो जाओ, इमाम शौकत। हम तादाद में कहीं कम हैं। वज़ीरे–आज़म देखकर भी अनदेखा कर रहे हैं। शहर के हुकुमरान खामोश हैं। हम अकेले इस हुजूम को नहीं रोक पायेंगे। बहू–बेटियों की ज़िन्दगी और इज़्ज़त को ख़तरे में मत डालो। हमें इस आग में मत झोकों। खामोश हो जाओ इमाम शौकत।''

घंटियों की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी। जयकारों का उद्घोष बढ़ता जा रहा था। हुजूम 'उसकी' तरफ बढ़ता चला जा रहा था। कितने सारे थे पुण्य कमाने वाले! तभी कोतवाल ने शौकत को एक तरफ धक्का दिया। शौकत गिर गया। इससे पहले कि वह उठता कई पैर उसे कुचलते हुए उस पर से गुज़र गये। एक बार वह बड़ी मुश्किल से उठा और उसने भर्रायी आवाज़ में फिर वही दोहराया पर हुजूम ने एक बार फिर उसे गिरा दिया। सारा हुजूम वहाँ पहुँच गया था। उसकी आँखें देख रही थीं कैसे हज़ारों लोग उसके गुम्बद पर और गुम्बद के चारों तरफ खड़े जयकारा कर रह थे और कई सारे हथौड़े, छैनी–बल्लम और लाठियाँ गुम्बद का सीना चीर रही थीं। कहीं से एक आवाज़ आयी, ''एक हथौड़ा और ज़ोर से'' दूसरी ने कहा, ''ले और ज़ोर से'', और तीसरी ने कहा, ''जय हो।'' फिर शौकत ने सुना एक लम्बा जयकारा और लाखों घंटियों की आवाज़ें। इन सबने उसे बहरा बना दिया था। कुछ ही पल में दायीं तरफ का शहर खुशी में नाच उठा और बायीं तरफ का सिसकियाँ भर–भर कर रोने लगा। कोतवाल और कमिश्नर जा चुके थे। शौकत बड़ी मुश्किल से उठा और गुम्बद की तरफ भागने की कोशिश करने लगा । आज उसे गुम्बद बहुत दूर लग रहा था। जितने भी जोर से भागने की कोशिश करता उतना ही ज़्यादा लड़खड़ा कर गिर जाता। इसी तरह गिरते–उठते उसने अपने आपको पागल नजूमी शान्ति के सामने पाया। वह साफ–साफ देख रहा था कि शान्ति के होठ वही कल वाली बातें दोहराये जा रहे हैं वैसे ही आँसू बहे जा रहे हैं। शौकत के होठ हिले, तु... म... ने... स ... च ... न ... र ... क ... भे ... ड़ि ... ये ... शे ... र ... है ... वा ... नि ... य ... त ... इन्सा ... का ... खू ... न ...''।

पृष्ठ 15 का शेष.....

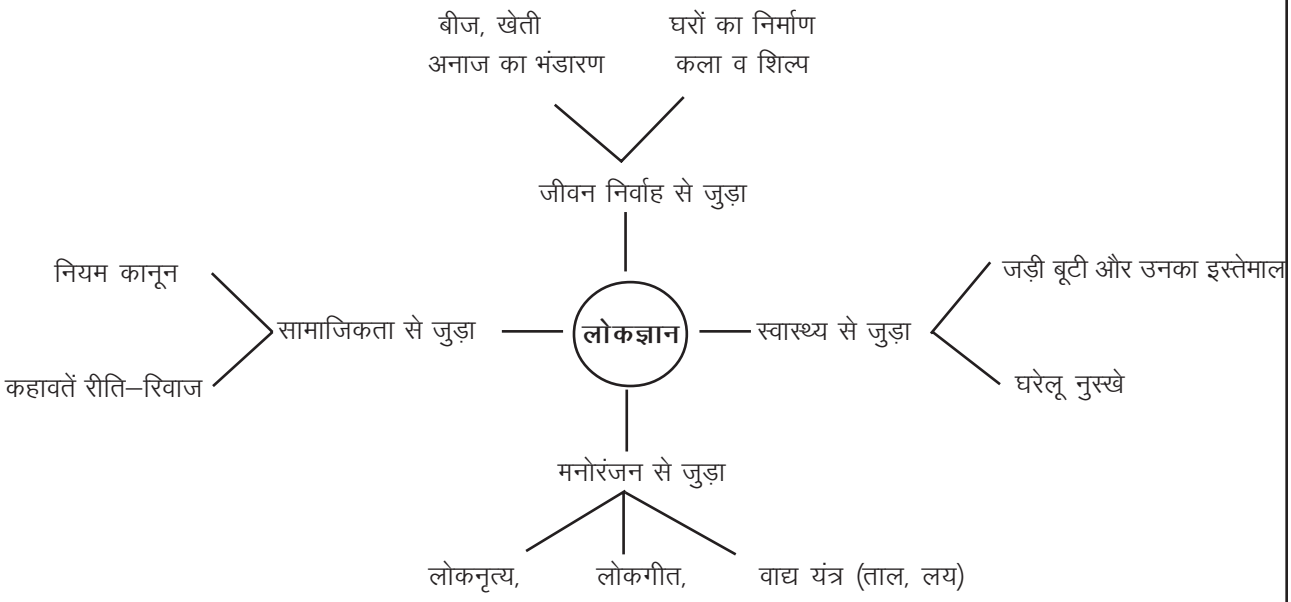

मॉडल लोकज्ञान

हमें यदि अपनी इस लोक ज्ञान की संस्कृति को आने वाली पीढ़ियों के लिए संजोकर रखना है तो हमें इन सबका दस्तावेजीकरण करना बहुत जरूरी है क्योंकि आज के तेज़ रफ्तार के जमाने में इस ज्ञान के लुप्त होने की संभावना बनी हुई है। यदि हम चाहते हैं कि ये लोक ज्ञान जो हमारे पूर्वजों की विरासत हमारे लिए है। आने वाली पीढ़ियां भी इसके बारे में जान सकें तो हमें आज व अभी से इसे सहेजकर रखना शुरू करना होगा जिससे हम वैज्ञानिक युग में लोक विज्ञान को भी जिंदा रख सकेंगे क्योंकि सबसे सीमांत व्यक्ति को खुशहाल रखने का यही एक सुगम व सस्ता रास्ता है।

साथियों, हमें बड़े शोक से सूचित करना पड़ रहा है कि आइ.एस.डी. के साथी, जाने–माने समाज वैज्ञानिक, अमन और धर्मनिरपेक्षता आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्ता दिलीप उपाध्याय अब हमारे बीच नहीं रहे। सारा आइ.एस.डी. उन्हें सलाम करता है।

isd **इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**
फ्लैट नम्बर–110, नम्बरदार हाउस,
62–ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका
नई दिल्ली–110067
टेलीफैक्स : 011–26177904
ईमेल : notowar@rediffmail.com

केवल सीमित वितरण के लिए